जीवन-क्रान्ति के सूत्र

भगवान श्री रजनीश

जीवन-क्रान्ति के सूत्र

भगवान श्री रजनीश

रजनीश फाउन्डेशन प्रकाशन, पूना
१९७५
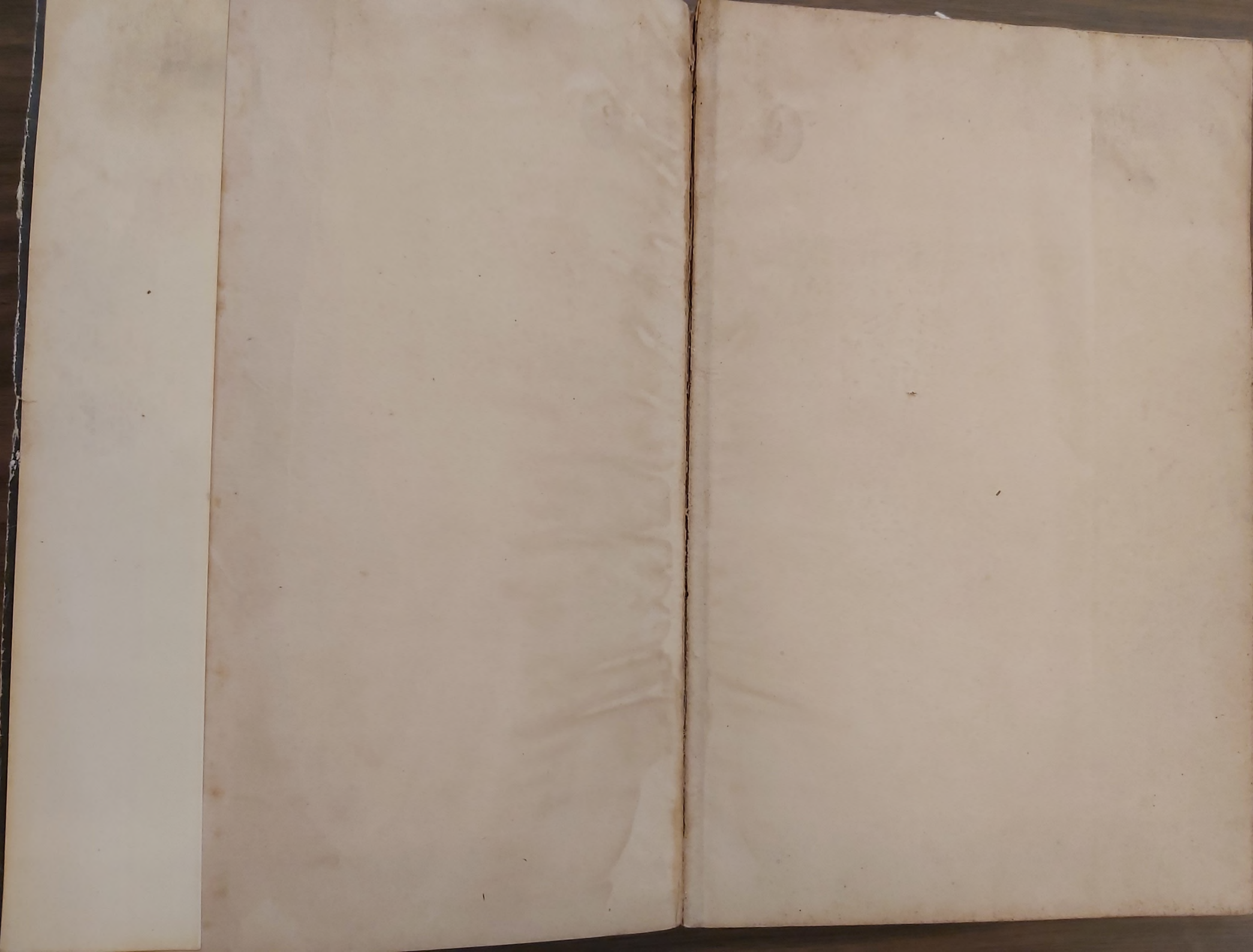
जीवन-क्रान्ति के सूत्र
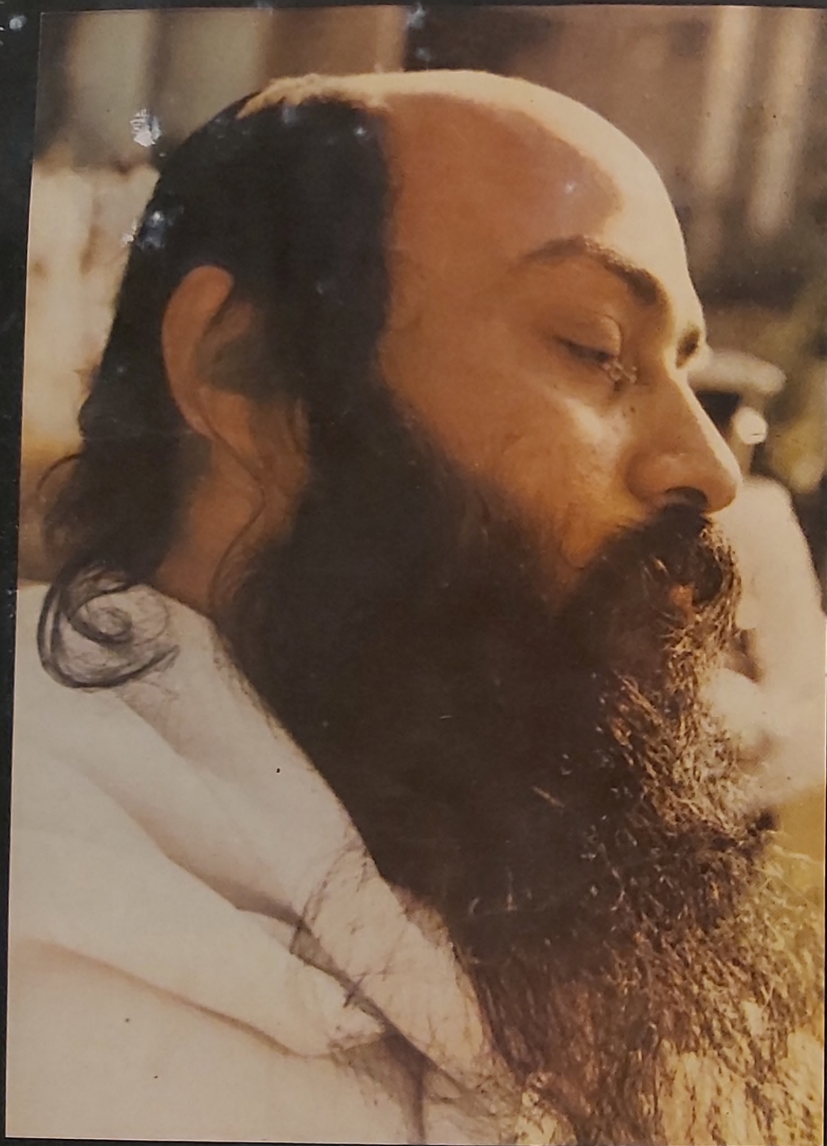
भगवान श्री रजनीश

जीवन-क्रान्ति के सूत्र

प्रवचन :

भगवान श्री रजनीश

सम्पादन :

स्वामी चैतन्य भारती

संकलन

स्वामी आनन्द बोधिधर्म

रजनीश फाउण्डेशन प्रकाशन, पूना

१९७५

प्रकाशक :

मा योग लक्ष्मी

सचिव : रजनीश फाउन्डेशन

रजनीश आश्रम, १७, कोरेगांव पार्क, पूना-१

प्रथम संस्करण : १९७५

प्रति : १०००

मूल्यः बारह रुपये

मुद्रक :

नारायण मु. उस्कैकर

श्री रजनीश आश्रम प्रेस,

पूना-४११ ००१

जीवन-क्रान्ति के सूत्र

बड़ौदा नगर में 'जीवन-क्रान्ति के सूत्र' विषय पर भगवान श्री रजनीश द्वारा १३ फरवरी से १५ फरवरी १९६९ तक दिये गये चार प्रवचनों का संकलन

अन्तर्विषय

पहला प्रवचन

बड़ौदा, १३ फरवरी, १९६९, प्रातः

सिद्धांत, शास्त्र और वाद से मुक्ति

मेरे प्रिय आत्मन,

अभी-अभी सूरज निकला। सूरज के दर्शन कर रहा था। देखा आकाश में दो पक्षी उड़े जा रहे हैं। आकाश में न तो कोई रास्ता है, न कोई सीमा है, न कोई दीवाल है, न उड़ने वाले पक्षियों के कोई चरण-चिन्ह बनते हैं। खुले आकाश में जिनकी कोई सीमाएं नहीं, उन पक्षियों को उड़ता देखकर मेरे मन में एक सवाल उठा: क्या आदमी की आत्मा भी इतने ही खुले आकाश में उड़ने की मांग नहीं करती? क्या आदमी के प्राण भी नहीं तड़पते हैं सारी सीमाओं के ऊपर उठ जाने के लिए—सारे बंधन तोड़ देने के लिए? सारी दीवालों के पार—वहां, जहां कोई दीवाल नहीं; वहां, जहां कोई फासले नहीं; वहां, जहां कोई रास्ते नहीं; वहां, जहां कोई चरण-चिन्ह नहीं बनते—उस खुले आकाश में उठ जाने की मनुष्य की आत्मा की भी क्या प्यास नहीं है?

उस खुले आकाश का नाम है, परमात्मा। लेकिन अभी तो पैदा होते ही बंधनों में बंधने लगता है। चाहे पैदा कोई स्वतंत्र होता हो, लेकिन बहुत कम सौभाग्यशाली लोग हैं, जो स्वतंत्र जीते हैं; और बहुत कम सौभाग्यशाली लोग हैं, जो स्वतंत्र होकर मर पाते हैं। आदमी पैदा तो स्वतंत्र होता है, और फिर निरंतर परतंत्र होता चला जाता है। किसी आदमी की आत्मा परतंत्र नहीं होना चाहती, फिर भी आदमी परतंत्र होता चला जाता है!

···तो ऐसा प्रतीत होता है कि शायद हमने परतंत्रता की बेड़ियों को फूलों से सजा रखा है; शायद हमने परतंत्रता को स्वतंत्रता के नाम दे रखे

हैं ; शायद हमने कारागृहों को मंदिर समझ रखा है। और इसलिए यह सम्भव हो सका है कि प्रत्येक आदमी के प्राण स्वतंत्र होना चाहते हैं, पर प्रत्येक आदमी परतंत्र ही जीता है और परतंत्र ही मरता है। बल्कि, ऐसा भी दिखायी पड़ता है कि हम अपनी परतंत्रता की रक्षा भी करते हैं। अगर परतंत्रता पर चोट हो, तो हमें तकलीफ भी होती है, पीड़ा भी होती है। अगर कोई हमारी परतंत्रता तोड़ देना चाहे, तो वह हमें दुश्मन भी मालूम होता है।

परतंत्रता से आदमी का ऐसा प्रेम क्या है?

"नहीं परतंत्रता से किसी का भी प्रेम नहीं है। लेकिन परतंत्रता को हमने स्वतंत्रता के शब्द और वस्त्र ओढ़ा रखे हैं। एक आदमी अपने को हिंदू कहने में जरा भी ऐसा अनुभव नहीं करता कि मैं अपनी गुलामी की सूचना कर रहा हूं। एक आदमी अपने को मुसलमान कहने में जरा भी नहीं सोचता कि मुसलमान होना मनुष्यता के ऊपर दीवाल बनानी है। एक आदमी किसी वाद में, किसी सम्प्रदाय में, किसी देश में अपने को बांधकर कभी ऐसा नहीं सोचता कि मैंने अपना कारागृह अपने हाथों से बना लिया है। बड़ी चालाकी, बड़ा धोखा आदमी अपने को देता रहा है। और सबसे बड़ा धोखा यह है कि हमने कारागृहों को सुन्दर नाम दे दिये हैं, हमने बेडियों को फूलों से सजा दिया है ; और जो हमें बांधे हुए हैं, उन्हें हम मुक्तिदायी समझ रहे हैं।

यह मैं पहली बात आज आपसे कहना चाहता हूं कि जो लोग भी अपने जीवन में क्रान्ति लाना चाहते हैं, सबसे पहले उन्हें यह समझ लेना होगा कि बंधा हुआ आदमी कभी भी जीवन की क्रान्ति से नहीं गुजर सकता। और हम सारे ही लोग बंधे हुए लोग हैं। यद्यपि हमारे हाथों में जंजीरें नहीं है, हमारे पैरों में बेड़ियां नहीं है ; लेकिन हमारी आत्माओं पर बहुत जंजीरें हैं, बहुत बेड़ियां हैं। और पैरों में बेड़ियां पड़ी हों, तो दिखायी भी पड़ जाती हैं, पर आत्मा पर जंजीरें पड़ी हों, तो दिखायी भी नहीं पड़तीं। अदृश्य बंधन इस बुरी तरह बांध लेते हैं कि उनका पता भी नहीं चलता। और जीवन हमारा एक कैद बन जाता है। और वे अदृश्य बंधन हैं—सिद्धान्तों के शास्त्रों के और शब्दों के।

"एक गांव में एक दिन सुबह-सुबह बुद्ध का प्रवेश हुआ। गांव के द्वार पर ही एक व्यक्ति ने बुद्ध को पूछा—"आप ईश्वर को मानते हैं? मैं नास्तिक हूं। मैं ईश्वर को नहीं मानता हूं। आपकी क्या दृष्टि है?" बुद्ध ने कहा—

"ईश्वर? ईश्वर है। ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ भी सत्य नहीं है।" बुद्ध गांव के भीतर पहुँचे तो एक दूसरे व्यक्ति ने बुद्ध को कहा, "मैं आस्तिक हूं। मैं ईश्वर को मानता हूं। क्या आप भी ईश्वर को मानते हैं?" बुद्ध ने कहा, "ईश्वर? ईश्वर है ही नहीं। मानने का कोई सवाल ही नहीं उठता। ईश्वर एक असत्य है!"

पहले आदमी ने पहला उत्तर सुना था, दूसरे आदमी ने दूसरा उत्तर सुना। लेकिन बुद्ध के साथ एक भिक्षु था, आनन्द। उसने दोनों उत्तर सुने। वह बहुत हैरान हो गया कि सुबह बुद्ध ने कहा 'ईश्वर है' और दोपहर बुद्ध ने कहा 'ईश्वर नहीं है!' आनन्द बहुत चिंतित हो गया कि बुद्ध का प्रयोजन क्या है? उसने सोचा, सांझ फुरसत होगी, रात सब लोग विदा हो जायेंगे, तब पूछ लेगा। लेकिन सांझ तो मुश्किल और बढ़ गयी। एक तीसरे आदमी ने आकर कहा, "मुझे कुछ भी पता नहीं है कि ईश्वर है या नहीं। मैं आपसे पूछता हूं, आप क्या मानते हैं—ईश्वर है, या नहीं?"

बुद्ध उसकी बात सुनकर चुप रह गये और उन्होंने कोई भी उत्तर नहीं दिया। रात जब सारे लोग विदा हो गये, तो आनन्द बुद्ध को पूछने लगा कि मैं बहुत मुश्किल में पड़ गया हूं। मुझे बहुत झंझट में डाल दिया है आपने। सुबह कहा—"ईश्वर है ; दोपहर कहा—नहीं है ; सांझ चुप रह गये। मैं क्या समझूं?"

बुद्ध ने कहा—"उन तीनों में कोई भी उत्तर तेरे लिए नहीं दिया गया था। तूने वे उत्तर लिये क्यों? जिनके प्रश्न थे, उनको वे उत्तर दिये गये थे। तुझे तो कोई उत्तर दिया नहीं गया था।"

आनन्द ने कहा, "क्या मैं अपने कान बंद रखता। मैंने तीनों बातें सुन ली हैं। यद्यपि उत्तर मुझे नहीं दिये गये, लेकिन देने वाले तो आप एक हैं। और आपने तीन उत्तर दिये।"

बुद्ध ने कहा, "तू नहीं समझा। मैं उन तीनों की मान्यताएं तोड़ देना चाहता था। सुबह जो आदमी आया था, वह नास्तिक था। जो नास्तिकता में बंध जाता है, उस आदमी की आत्मा भी परतंत्र हो जाती है। मैं चाहता था, वह अपनी जंजीर से मुक्त हो जाये। उसकी जंजीरें तोड़ देनी थीं। इसलिए उसे मैंने कहा—ईश्वर है। ईश्वर है—मैंने सिर्फ इसलिए कहा कि वह जो यह मानकर बैठा है कि ईश्वर नहीं है—वह अपनी जगह से हिल जाये, उसकी जड़ें उखड़

जायें, उसकी मान्यता गिर जाये, वह फिर से सोचने को मजबूर हो जाये। वह रुक गया है। उसने सोचा है कि यात्रा समाप्त हो गयी है। और जो भी ऐसा समझ लेता है कि यात्रा समाप्त हो गयी है, वह कारागृह में पहुँच जाता है।"

जीवन है अनंत यात्रा। वह यात्रा कभी भी समाप्त नहीं होती। लेकिन हिंदू की यात्रा समाप्त हो जाती है, बौद्ध की यात्रा समाप्त हो जाती है, जैन की यात्रा समाप्त हो जाती है, गांधीवादी की यात्रा समाप्त हो जाती है, मार्क्स-वादी की यात्रा समाप्त हो जाती है; जिसको भी वाद मिल जाता है, उसकी यात्रा समाप्त हो जाती है। वह समझने लगता है कि उसने सत्य को पा लिया है, कि वह सत्य को उपलब्ध हो गया है; अब आगे खोज की कोई जरूरत नहीं है।

सभी सम्प्रदायों की, सभी धर्मों की, सभी पकड़ वालों की खोज समाप्त हो जाती है।

···बुद्ध ने कहा, मैं उसे अलग कर देना चाहता था उसकी जंजीरों से, ताकि वह फिर से पूछे, वह फिर से खोजे, वह आगे बढ़ जाये।

"···दोपहर जो आदमी आया था, वह आदमी आस्तिक था। वह यह मानकर बैठ गया था कि ईश्वर है। उसे मुझे कहना पड़ा कि ईश्वर नहीं है। ईश्वर है ही नहीं। ताकि उसकी जंजीरें भी ढीली हो जायें, उसके मत भी टूट जायें; क्योंकि सत्य को वे ही लोग उपलब्ध होते हैं, जिनका कोई भी मत नहीं होता।

"और सांझ जो आदमी आया था, उसका कोई मत नहीं था। उसने कहा, मुझे कुछ भी पता नहीं है कि ईश्वर है या नहीं। इसलिए मैं भी चुप रह गया। मैंने उससे कहा कि तू चुप रह कर खोज, मत की तलाश मत कर, सिद्धांत की तलाश मत कर। चुप हो। इतना चुप हो जा कि सारे मत खो जायें। तो शायद, जो है, उसका तुझे पता चल जाये।"

बुद्ध के साथ आप भी रहे होते तो मुश्किल में पड़ गये होते। अगर एक उत्तर सुना होता तो शायद बहुत मुसीबत न होती। लेकिन, अगर तीनों उत्तर सुने होते, तो बहुत मुसीबत हो जाती।

बुद्ध का प्रयोजन क्या है? ···बुद्ध चाहते क्या हैं?

··बुद्ध आपको कोई सिद्धांत नहीं देना चाहते हैं; बुद्ध, आपके जो सिद्धांत हैं, उनको भी छीन लेना चाहते हैं। बुद्ध आपके लिए कोई कारागृह

नहीं बनाना चाहते; आपका जो बना कारागृह है, उसको भी गिरा देना चाहते हैं—ताकि वह खुला आकाश जीवन का, खुली आंख उसे देखने की—उपलब्ध हो जाये।

इससे भी क्या होता है। बुद्ध लाख चिल्लाते रहें कि तोड़ दो सिद्धांत, लेकिन बुद्ध के पीछे लोग इकट्ठे हो जाते हैं और उनके सिद्धांत को पकड़ लेते हैं। दुनिया में जिन थोड़े-से लोगों ने मनुष्य को मुक्त करने की चेष्टा की है—मनुष्य अजीब पागल है—उन्हीं लोगों को उसने अपना बंधन बना लिया है। चाहे फिर वह बुद्ध हों, चाहे महावीर हों, चाहे मार्क्स हो और चाहे गांधी हो—कोई भी हो—जो भी मनुष्य को मुक्त करने की चेष्टा करता है, आदमी अजीब पागल है, वह उसी को अपना बंधन बना लेता है, उसी को अपनी जंजीर बना लेता है। और जिंदा आदमी तो कोशिश ही कर सकता है कि वह किसी के लिए उसकी जंजीर न बने, वह मुर्दा आदमी क्या करता है?

मरे हुए नेता, मरे हुए संत बहुत खतरनाक सिद्ध होते हैं—अपने कारण नहीं, आदमी की आदत के कारण। दुनिया के सभी महापुरुष, जो कि मनुष्य को मुक्त कर सकते थे, लेकिन नहीं कर पाये, क्योंकि मनुष्य उनको ही अपने बंधन में रूपांतरित कर लेता है। इसलिए मनुष्य के इतिहास में एक अजीब घटना घटी है; कि जो भी संदेश लेकर आता है मुक्ति का, हम उसको ही अपना एक नया कारागृह बना लेते हैं। इस भांति जितने भी मुक्ति के संदेश दुनिया में आये, उतने ही ढंग की जंजीरें दुनिया में निर्मित होती चली गयीं। आज तक यही हुआ है—क्या आगे भी यही होगा? अगर आगे भी यही हुआ, तो फिर मनुष्य के लिए कोई भविष्य दिखायी नहीं पड़ता।

लेकिन ऐसा मुझे नहीं लगता कि जो आज तक हुआ है, वह आगे भी होना जरूरी है। वह आगे होना जरूरी नहीं है। यह संभव हो सकता है कि जो आज तक हुआ है, वह आगे न हो—और न हो, तो मनुष्यता मुक्त हो सकती है। लेकिन मनुष्यता मुक्त हो या न हो, एक-एक मनुष्य को भी अगर मुक्त होना है तो उसे अपने चित्त पर, अपने मन पर, अपनी आत्मा पर पड़ी हुई सारी जंजीरों को तोड़ देने की हिम्मत जुटानी पड़ती है।

जंजीरें बहुत मधुर हैं, बहुत सुन्दर हैं, सोने की हैं, इसलिए और भी कठिनाई हो जाती है। महापुरुषों से मुक्त होना बहुत कठिन मालूम पड़ता है, सिद्धांतों से मुक्त होना बहुत कठिन मालूम पड़ता है, शास्त्रों से मुक्त होना

बहुत कठिन मालूम पड़ता है। और अगर कोई मुक्त होने के लिए कहे, तो वह आदमी दुश्मन मालूम पड़ता है; क्योंकि हम चीजों को मानकर निश्चित हो जाते हैं; खोजने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। और अगर कोई आदमी कहता है—मुक्त हो जाओ, तो फिर खोजने की जरूरत शुरू हो जाती है; फिर मंजिल खो जाती है; फिर रास्ता काम में आ जाता है। और रास्ते पर चलने में तकलीफ मालूम पड़ती है; मंजिल पर पहुँच जाने में आराम मालूम पड़ता है; क्योंकि मंजिल पर पहुँचने के बाद फिर कोई यात्रा नहीं, कोई श्रम नहीं।

मनुष्य ने अपने आलस्य के कारण झूठी मंजिलें तय कर ली हैं। और हम सबने मंजिलें पकड़ रखी हैं।

पहली बात, पहला सूत्र जीवन-क्रांति का मैं आपसे कहना चाहता हूं: और वह यह कि एक स्वतंत्र चित्त चाहिए। एक मुक्त चित्त चाहिए। एक बंधा हुआ, केप्सूल के भीतर बंद, दीवालों के भीतर बंद, पक्षपातों के भीतर बंद, वाद और सिद्धांत और शब्दों के भीतर बंद चित्त कभी भी जीवन में क्रांति से नहीं गुजर सकता। और अभागे हैं वे लोग, जिनका जीवन एक क्रान्ति नहीं बन पाता; क्योंकि वे वंचित ही रह जाते हैं उस सत्य को जानने से कि जीवन में क्या छिपा है? क्या था राज, क्या था आनन्द, क्या था सत्य, क्या था संगीत, क्या था सौंदर्य? उस सबसे ही वे वंचित रह जाते हैं।

. . . मैंने सुना है, एक सम्राट ने अपनी सुरक्षा के लिए एक महल बनवाया था। उसने ऐसा इंतजाम किया था कि महल के भीतर कोई घुस न सके। उसने महल के सारे द्वार-दरवाजे बंद करवा दिये थे। सिर्फ एक ही दरवाजा महल म रहने दिया था और दरवाजे पर हजार नंगी तलवारों का पहरा बैठा दिया था। एक छोटा छेद भी नहीं था मकान में। महल के सारे द्वार-दरवाजे बंद करवाकर वह बहुत निश्चित हो गया था। अब किसी खिड़की से, द्वार से, दरवाजे से, किसी डाकू के, किसी हत्यारे के, किसी दुश्मन के आने की कोई सम्भावना नहीं रह गई थी। पड़ोस के राजा ने जब यह सब सुना, तो वह उसके महल को देखने आया। पड़ोस का राजा भी उस महल को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ. . . आदमी ऐसा पागल है, कि बंद दरवाजों को देखकर बहुत प्रसन्न होता है। क्योंकि बंद दरवाजों को वह समझता है—सुरक्षा, सिक्योरिटी, सुविधा।

. . . उस राजा ने भी महल देखकर कहा, "हम भी एक ऐसा महल बनायेंगे।

यह महल तो बहुत सुरक्षित है। इस महल में तो निश्चित रहा जा सकता है।"

जब पड़ोस का राजा विदा हो रहा था और महल की प्रशंसा कर रहा था, तब सड़क पर बैठा हुआ एक बूढ़ा भिखारी प्रशंसा सुनकर जोर से हंसने लगा। भिखारी को हंसता देख महल सम्राट ने पूछा—"तू हंसता क्यों है? कोई भूल तुझे दिखायी पड़ती है?"

भिखारी ने कहा—"एक भूल रह गयी है, महाराज! जब आप यह मकान तैयार करवाते थे, तभी मुझे लगता था कि एक भूल रह गयी है।"

सम्राट ने कहा—"कौन-सी भूल?" उस भिखारी ने कहा—"एक दरवाजा आपने रखा है, यही भूल रह गयी है। यह दरवाजा और बंद कर लें, और भीतर हो जायें, तो फिर आप बिलकुल सुरक्षित हो जायेंगे। फिर कोई भी किसी भी हालत में भीतर नहीं पहुँच सकेगा।"

सम्राट ने कहा—"पागल, फिर तो यह मकान कब्र हो जायेगा। अगर मैं एक दरवाजा और बंद कर लूं, तो मैं मर जाऊँगा भीतर। फिर तो यह महल मेरी मौत हो जायेगी।"

भिखारी ने कहा—"इतना आपको समझ में आता है कि एक दरवाजा और बंद कर लेने से आप मर जायेंगे, तो क्या आपको यह समझ में नहीं आता कि जिस मात्रा में दरवाजे आपने बंद किये हैं, उसी मात्रा में आप मर गये हैं? उसी मात्रा में जीवन से आपके संबंध टूट गये हैं? अब एक दरवाजा बचा है, तो थोड़ा-सा संबंध बचा है। अब आप थोड़े-से जीवित हैं। इस दरवाजे को भी बंद कर देंगे, तो बिलकुल मर जायेंगे? अब यह मकान एक कब्र की तरह है, जिसमें एक दरवाजा है। यह दरवाजा और बंद हो जाये, तो कब्र पूरी हो जायेगी। और अगर आपको यह लगता है कि एक दरवाजा बंद करने से मौत हो जायेगी, तो जो दरवाजे आपने बंद करवा दिये हैं, उन्हें खुलवा दें। और अगर मेरी बात समझें, तो सब दीवालें गिरवा दें, ताकि खुले सूरज के नीचे, खुले आकाश के नीचे जीवन का पूरा आनंद उपलब्ध हो सके।"

शरीर के लिए मकान जरूरी है, और शरीर के लिए दीवालें भी जरूरी हैं; पर आत्मा के लिए न तो मकान जरूरी है, न दीवालें जरूरी हैं। लेकिन जिनके पास शरीर को छिपाने के लिए मकान नहीं हैं, उन्होंने भी अपनी आत्मा को छिपाने के लिए दीवालें और मकान बना रखे हैं। जो खुले आकाश के नीचे सोते हैं, उनकी आत्माएं भी खुले आकाश में नहीं उड़तीं। जिनके शरीर

पर वस्त्र नहीं हैं, उन्होंने भी आत्मा को लोहे के वस्त्र पहना रखे हैं। और फिर आदमी पूछता है, हम दुखी क्यों हैं? फिर आदमी पूछता है, हम पीड़ित क्यों फिर हैं? फिर आदमी पूछता है, आनन्द कहाँ मिलेगा?

कभी परतंत्र चित को आनन्द मिला है? कभी परतंत्रता में सुख जाना गया है? परतंत्र व्यक्ति कभी भी किसी भी स्थिति में सत्य को, सौन्दर्य को उपलब्ध हुआ है...?

मैं एक घर में मेहमान था। एक बहुत प्यारी चिड़िया उस घर के लोगों ने पिंजड़े में कैद कर रखी थी। चिड़िया को बाहर का जगत् दिखायी पड़ता होगा, लेकिन पिंजड़े की दीवालों के भीतर बंद चिड़िया को पता भी नहीं हो सकता कि बाहर एक खुला आकाश है, और बाहर खुले आकाश में उड़ने का भी एक आनन्द है। शायद वह चिड़िया उड़ने का ख्याल भी भूल गयी होगी। शायद, पंख किसलिए हैं, यह भी उसे पता नहीं रहा होगा। और अगर आज उसे पिंजड़े के बाहर भी कर दिया जाये, तो शायद वह बाहर आने से घबड़ायेगी और अपने सुरक्षित पिंजड़े में वापस आ जायेगी। शायद, पंख उसे अब निरर्थक लगते होंगे, बोझ लगते होंगे। और उसे यह भी पता नहीं होगा कि खुले आकाश में सूरज की तरफ बादलों के पार उड़ जाने का भी एक आनन्द है, एक जीवन है। अब उसे कुछ भी पता नहीं होगा।

उस चिड़िया को तो कुछ भी पता नहीं होगा--क्या हमें पता है? हमने भी अपने चारों ओर दीवालें बना रखी हैं। उन दीवालों के पार, बियॉन्ड भी जहाँ कोई सीमा नहीं है। जहाँ आगे, और आगे अनंत विस्तार है। जहाँ कोई लोक है। सूरज है, जहाँ बादलों के पार आगे खुला आकाश है।

नहीं, हमें भी उनका कोई पता नहीं है। शायद हमें भी आत्मा एक बोझ मालूम पड़ती है। और हममें से बहुत-से लोग अपनी आत्मा को खो देने की हर चेष्टा करते हैं। शराब पीकर आत्मा को भुला देने की कोशिश करते हैं। संगीत सुनकर आत्मा को भुला देने की कोशिश करते हैं। किसी तरह आत्मा भूल जाये, इसकी चेष्टा करते हैं। हमें अपनी आत्मा भी एक बोझ मालूम पड़ती है, जैसे पिंजड़े में बंद एक चिड़िया को उसके पंख बोझ मालूम होते हैं। लेकिन हमें पता नहीं है कि एक आकाश है, जहाँ आत्मा भी एक पंख बन जाती है। और आकाश की एक उड़ान है, जिस उड़ान की उपलब्धि का नाम है–प्रभु—परमात्मा।

धर्म मनुष्य को मुक्त करने की कला है। अगर ठीक से कहूं तो धर्म मनुष्य के जीवन में क्रांति लाने की कला है। इसलिए कायर कभी धार्मिक नहीं हो सकते। डरे हुए लोग, भयभीत लोग कभी धार्मिक नहीं हो सकते। बल्कि भयभीत और डरे लोगों ने जो धर्म पैदा किया है, वह धर्म जरा भी नहीं है। वह धर्म के बिलकुल उल्टी चीज है। वह अधर्म से भी बदतर है। अधार्मिक आदमी भी साहसी हो सकता है। और जो आदमी साहसी है, वह बहुत दिन तक अधार्मिक नहीं रह सकता। अधार्मिक आदमी भी विचारशील होता है। और जो आदमी विचारशील है, वह बहुत दिन तक अधार्मिक नहीं रह सकता।

केशवचन्द्र विवाद करने गये थे रामकृष्ण से। वे रामकृष्ण की बातों का खण्डन करने गये थे। सारे कलकत्ते में खबर फैल गई थी कि चलें, केशवचन्द्र की बातें सुनें; रामकृष्ण तो गांव के गँवार हैं, क्या उत्तर दे सकेंगे केशवचन्द्र का? केशवचन्द्र तो बड़ा पण्डित है!

बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। रामकृष्ण के शिष्य बहुत डरे हुए थे, कि केशव के सामने रामकृष्ण क्या बात कर सकेंगे! कहीं ऐसा न हो कि फजीहत हो जाये। सब मित्र तो डरे हुये थे, लेकिन रामकृष्ण बार-बार द्वार पर आकर पूछते थे कि 'केशव अभी तक आये नहीं?' एक भक्त ने कहा भी–'आप पागल होकर प्रतीक्षा कर रहे हैं! क्या आपको पता नहीं कि आप दुश्मन की प्रतीक्षा कर रहे हैं? वे आकार आपकी बातों का खण्डन करेंगे। वे बहुत बड़े तार्किक हैं।' रामकृष्ण कहने लगे, 'वही देखने के लिए मैं आतुर हो रहा हूं; क्योंकि इतना तार्किक आदमी अधार्मिक कैसे रह सकता है, यही मुझे देखना है। इतना विचारशील आदमी कैसे धर्म के विरोध में रह सकता है, यही मुझे देखना है। यह असंभव है।'

केशव आये, और केशव ने विवाद शुरू किया। केशव ने सोचा था, रामकृष्ण उत्तर देंगे। लेकिन केशव एक-एक तर्क देते थे और रामकृष्ण उठ-उठ कर उन्हें गले लगा लेते थे; आकाश की तरफ हाथ जोड़कर किसी को धन्यवाद देने लगते थे। थोड़ी देर में केशव बहुत मुश्किल में पड़ गये। उनके साथ आये लोग भी मुश्किल में पड़ गये। आखिर केशव ने पूछा, "आप करते क्या हैं? क्या मेरी बातों का जवाब नहीं देंगे? और हाथ जोड़कर आकाश में धन्यवाद किसको देते हैं?"

रामकृष्ण ने कहा, "मैंने बहुत चमत्कार देखे, यह चमत्कार मैंने नहीं देखा।

इतना बुद्धिमान आदमी, इतना विचारशील आदमी धर्म के विरोध में कैसे रह सकता है ? जरूर इसमें कोई उसका चमत्कार है। इसलिए मैं आकाश में हाथ उठाकर 'उसे' धन्यवाद देता हूं। और तुमसे मैं कहता हूं, तुम्हें मैं जवाब नहीं दूंगा, लेकिन जवाब तुम्हें मिल जायेंगे; क्योंकि जिसका चित्त इतना मुक्त होकर सोचता है, वह किसी तरह के बंधन में नहीं रह सकता। वह अधर्म के बंधन में भी नहीं रह सकता। झूठे धर्म के बंधन तुमने तोड़ डाले हैं, अब जल्दी, अधर्म के बंधन भी टूट जायेंगे। क्योंकि, विवेक अंततः सारे बंधन तोड़ देता है। और जहां सारे बंधन टूट जाते हैं, वहां जिसका अनुभव होता है, वही धर्म है, वही परमात्मा है। मैं कोई दलील नहीं दूंगा। तुम्हारे पास दलील देनेवाला बहुत अद्भुत मस्तिष्क है। वह खुद ही दलील खोज लेगा।.."

केशव सोचते हुए वापस लौटे। और उस रात उन्होंने अपनी डायरी में लिखा: "आज मेरा एक धार्मिक आदमी से मिलना हो गया है। और शायद उस आदमी ने मेरा रूपांतरण भी शुरू कर दिया है। मैं पहली बार सोचता हुआ लौटा हूं कि उस आदमी ने मुझे कोई उत्तर भी नहीं दिया और मुझे विचार में भी डाल दिया है!"

मनुष्य के पास विवेक है, लेकिन बंधन में है। और जिसका विवेक बंधन में है, वह सत्य तक नहीं पहुँच सकता। हमें सोच लेना है—एक-एक व्यक्ति को सोच लेना है कि हमारा विवेक बंधन में तो नहीं है ? अगर मन में कोई भी सम्प्रदाय है, तो विवेक बंधन में है। अगर मन में कोई भी शास्त्र है, तो विवेक बंधन में है। अगर मन में कोई भी महात्मा है, तो विवेक बंधन में है। और जब मैं ऐसा कहता हूँ तो लोग सोचते हैं, शायद मैं महात्माओं और महापुरुषों के विरोध में हूँ। मैं किसी के विरोध में क्यों होने लगा ? मैं किसी के भी विरोध में नहीं हूँ। बल्कि सारे महापुरुषों का काम ही यही रहा है कि आप बंध न जायें। सारे महापुरुषों की आकांक्षा यही रही है कि आप बंध न जायें। और जिस दिन आपके बंधन गिर जायेंगे, तो आपको पता चलेगा कि आप भी वही हो जाते हैं, जो महापुरुष हो जाते हैं।

महापुरुष मुक्त हो जाता है, और हम अजीब पागल लोग हैं, हम उसी मुक्त महापुरुष से बंध जाते हैं। समस्त वाद बांध लेते हैं। वाद से छूटे बिना जीवन में क्रांति नहीं हो सकती। लेकिन यह ख्याल भी नहीं आता कि हम बंधे हुए लोग हैं। अगर मैं अभी कहूँ कि हिन्दू-धर्म व्यर्थ है, या मैं कहूँ कि

इस्लाम व्यर्थ है, या मैं कहूँ कि गांधीवाद से छुटकारा जरूरी है, तो आपके मन को चोट लगेगी। और अगर चोट लगे, तो आप समझ लेना कि आप बंधे हुए आदमी हैं।

चोट किसको लगती है ? चोट का कारण क्या है ? चोट कहाँ लगती है हमारे भीतर...?

चोट वहीं लगती है, जहाँ हमारे बंधन हैं। जिस चित्त पर बंधन नहीं है, उसे कोई भी चोट नहीं लगती। 'इस्लाम खतरे में है'—यह सुनकर वे जो इस्लाम के बंधन में बंधे हैं—खड़े हो जायेंगे युद्ध के लिए, संघर्ष के लिए। उनके छुरे बाहर निकल आयेंगे। 'हिन्दू-धर्म खतरे में है'—सुनकर, वे जो हिन्दू-धर्म के गुलाम हैं, वे खड़े हो जायेंगे लड़ने के लिए। और अगर कोई मार्क्स को कुछ कह दे, तो जो मार्क्स के गुलाम हैं, वे खड़े हो जायेंगे। और अगर कोई गांधी को कुछ कह दे, तो जो गांधी के गुलाम हैं, वे खड़े हो जायेंगे। लेकिन वह और यह गुलामी किसी के साथ भी हो सकती है। मेरे साथ भी हो सकती है...।

अभी मुझे पता चला कि बंबई में किसी ने अखबार में मेरे संबंध में कुछ लिखा होगा। तो किन्हीं मेरे दो मित्रों ने उन मित्र को रास्ते में कहीं पकड़ लिया और कहा कि अब अगर आगे कुछ लिखा तो तुम्हारी गर्दन दबा देंगे। मुझे जिस मित्र ने यह बताया, तो मैंने उन्हें कहा कि जिन्होंने उनको पकड़ कर कहा कि गर्दन दबा देंगे—वे मेरे गुलाम हो गये। वह मुझसे बंध गये।

...मैं अपने से नहीं बांध लेना चाहता हूँ किसी को। मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति किसी से बंधा हुआ न रह जाये। एक ऐसी चित्त की दशा हमारी हो कि हम किसी से बंधे हुए न हों। उसी हालत मे क्रांति तत्काल होनी शुरू हो जाती है। एक एक्सप्लोजन, एक विस्फोट हो जाता है। जो आदमी किसी से भी बंधा हुआ नहीं है, उसकी आत्मा पहली दफा अपने पंख खोल लेती है, और खुले आकाश में उडने के लिए तैयार हो जाती है।

हमारे पैर गड़े हैं जमीन में, और इस पर हम पूछते हैं कि चित दुखी है, अशांत है, परेशान है। आनन्द कैसे मिले ? परमात्मा कैसे मिले? सत्य कैसे मिले ? मोक्ष कैसे मिले? निर्वाण कैसे मिले ? कहीं आकाश में नहीं है निर्वाण। कहीं दूर सात आसमानों के पास नहीं है मोक्ष। यहीं है, और अभी है। और उस आदमी को उपलब्ध हो जाता है, जो कहीं भी बंधा हुआ नहीं

है। जिसकी कोई क्लिंगिग नहीं है। जिसके हाथ, किसी दूसरे के हाथ को नहीं पकड़े हुए हैं। वह अकेला है, और अकेला खड़ा है। और जिसने इतना साहस और इतनी हिम्मत जुटा ली है कि अब वह किसी का अनुयायी नहीं है, किसी के पीछे चलनेवाला नहीं है, किसी का अनुकरण करने वाला नहीं है। अब वह किसी का मानसिक गुलाम नहीं है, किसी का मेंटल स्लेव नहीं है।

...लेकिन हम कहेंगे कि हम जैन हैं और कभी नहीं सोचेंगे कि हम महावीर के मानसिक गुलाम हो गये। हम कहेंगे कि हम कम्युनिस्ट हैं और कभी नहीं सोचेंगे कि हम मार्क्स और लेनिन के मानसिक गुलाम हो गये। हम कहेंगे कि हम गांधीवादी हैं और कभी नहीं सोचेंगे कि हम गांधी के गुलाम हो गये।

दुनिया में गुलामों की कतारें लगी हैं। गुलामियों के नाम अलग-अलग हैं, लेकिन गुलामियां कायम हैं। मैं आपकी गुलामी नहीं बदलना चाहता कि एक आदमी से आपकी गुलामी छुड़ाकर दूसरे की गुलामी आपको पकड़ा दी जाये। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह वैसे ही है, जैसे लोग मरघट लाश को ले जाते हैं कंधे पर रख कर तो जब एक आदमी का कंधा दुखने लगता है, तो दूसरा आदमी अपने कंधे पर रख लेता है। थोड़ी देर में दूसरे का कंधा दुखने लगता है, तो तीसरा अपने कंधे पर रख लेता है।

आदमी गुलामियों में कंधे बदल रहा है। अगर गांधी से छूटता है तो मार्क्स को पकड़ लेता है; महावीर से छूटता है तो मुहम्मद को पकड़ लेता है; एक वाद से छूटता तो फौरन दूसरे वाद को पकड़ने का इंतजाम कर लेता है।

...लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं कि मैं कहता हूं—यह गलत है, वह गलत है। वे पूछते हैं, आप हमें यह बताइये कि सही क्या है? वे असल में यह पूछना चाहते हैं कि फिर हम पकड़ें क्या, वह हमें बताइए। जब तक हमारे पास पकड़ने को कुछ न हो, तब तक हम कुछ छोड़ेंगे नहीं। और मैं आपसे कह रहा हूं, पकड़ना गलत है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप क्या पकड़ें, मैं आपसे कह रहा हूं कि पकड़ना ही गलत है। क्लिंगिग इज सच। चाहे वह पकड़ गांधी से हो, या बुद्ध से हो, या मुझसे हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। पकड़ने वाले चित्त का स्वरूप एक ही है कि पकड़ने वाला चित्त खाली नहीं रहना चाहता। वह चाहता है कहीं-न-कहीं उसकी मुट्ठी बंधी रहे। उसे कोई सहारा होना चाहिए। और जब तक कोई आदमी किसी का सहारा खोजता है, तब तक उसकी आत्मा के पंख खुलने की स्थिति में नहीं आते।

जब आदमी बेसहारा हो जाता है, सारे सहारे छोड़ देता है, हैल्पलेस होकर खड़ा हो जाता है, और जानता है कि मैं बिलकुल अकेला हूं, कहीं किसी के कोई चरण-चिन्ह नहीं हैं...।

...कहां हैं महावीर के चरण-चिन्ह, जिन पर आप चल रहे हैं? कहां हैं कृष्ण के चरण-चिन्ह, जिन पर आप चल रहे हैं? जीवन खुले आकाश की भांति है, जिस पर किसी के चरण-चिन्ह नहीं बनते। किसको पकड़े हैं आप? कहां हैं कृष्ण के हाथ? कहां हैं गांधी के चरण, जिनको आप पकड़े हैं? सिर्फ आंख बंद करके सपना देख रहे हैं। सपने देखने से कोई आदमी मुक्त नहीं होता। न गांधी के चरण आपके हाथ में हैं, न कृष्ण के, न राम के। किसी के चरण आपके हाथ में नहीं हैं। आप अकेले खड़े हैं। आँख बंद करके कल्पना कर रहे हैं कि मैं किसी को पकड़े हुये हूं। जितनी देर तक आप यह कल्पना किये हुए हों, उतनी देर तक आपकी आत्मा के जागरण का अवसर पैदा नहीं होता। और जब तक आपके जीवन में वह क्रांति नहीं हो सकती, जो आपके सत्य के निकट ले आये। न जीवन में वह क्रांति हो सकती है कि जीवन के सारे पर्दे खुल जायें, उसका सारा रहस्य खुल जाये, उसकी सारी मिस्ट्री खुल जाये और आप जीवन को जान सकें, और देख सकें।

बंधा हुआ आदमी आँखों पर चश्मा लगाये हुए जीता है। वह खिड़कियों में से, छेदों में से देखता है दुनिया को। जैसे कोई एक छेद कर ले दीवाल में और उसमें से देखे आकाश को, तो उसे जो भी दिखायी पड़ेगा, वह उस छेद की सीमा से बंधा होगा, वह आकाश नही होगा। जिसे आकाश देखना है, उसे दीवालों के बाहर आ जाना चाहिए। और कई बार कितनी छोटी चीजें बांध लेती हैं हमें पता भी नहीं चलता।

रवीन्द्रनाथ एक रात अपने बजरे में एक छोटी-सी मोमबत्ती जला कर कोई किताब पढ़ते थे। आधी रात को जब पढ़ते-पढ़ते वे थक गये, तो मोमबत्ती को फूंक मार कर उन्होंने बुझा दिया और किताब बन्द कर दी। उस रात आकाश में पूर्णिमा का चांद खिला था। जैसे ही मोमबत्ती बुझी कि रवीन्द्रनाथ हैरान हो गये यह देखकर कि बजरे के रन्ध्र-रन्ध्र से, छिद्र-छिद्र से, खिड़की से, द्वार से चन्द्रमा के प्रकाश की किरणें भीतर आ गई हैं, और चारों ओर अद्भुत प्रकाश फैल गया है। वे खड़े होकर नाचने लगे। उस छोटी-सी मोमबत्ती के कारण उन्हें पता ही नहीं चला कि बाहर पूर्णिमा का चांद खिला है और उसका

प्रकाश भीतर आ रहा है। तब उन्हें खयाल आया कि छोटी-सी मोमबत्ती का प्रकाश किस भांति चांद के प्रकाश को रोक सकता है। उस रात उन्होंने एक गीत लिखा। उस गीत में उन्होंने लिखा कि मैं भी कैसा पागल था: छोटी-सी मोमबत्ती के मद्धिम धीमे, प्रकाश में बैठा रहा और बाहर चांद का प्रकाश बरसता था, उसका मुझे कुछ पता ही न चला। मैं अपनी मोमबत्ती से ही बंधा रहा। मोमबत्ती बुझी, तो मुझे पता चला कि बाहर, द्वार पर आलोक मेरी प्रतीक्षा कर रहा है।

जो ग्रादमी भी मत की, सिद्धान्त की, शास्त्र की मोमबत्तियों को जलाये बैठे रहते हैं, वे परमात्मा के अनन्त प्रकाश से वंचित हो जाते हैं। मत बुझ जाये, तो सत्य प्रवेश कर जाता है। और जो आदमी सब पकड़ छोड़ देता है, उस पर परमात्मा की पकड़ शुरू हो जाती है। जो ग्रादमी सब सहारे छोड़ देता है, उसे परमात्मा का सहारा उपलब्ध हो जाता है।

बेसहारा हो जाना परमात्मा का सहारा पा लेने का रास्ता है। सब रास्ते छोड़ देना, उसके रास्ते पर खड़े हो जाने की विधि है। सभी शब्दों, सभी सिद्धान्तों से मुक्त हो जाना, उसकी वाणी को सुनने का अवसर निर्मित करना है।

मैंने एक छोटी-सी कहानी सुनी है। मैंने सुना है, कृष्ण भोजन करने बैठे हैं और रुक्मणी उन्हें पंखा झल रही है। अचानक वे थाली छोड़कर उठ खड़े हुए और द्वार की तरफ भागे। रुक्मणी ने पूछा "क्या हुआ है? कहां भागे जा रहे हैं?" लेकिन, शायद उन्हें इतनी जल्दी थी कि वे उत्तर देने को भी नहीं रुके, द्वार तक गये भागते हुए। फिर द्वार पर जाकर रुक गये। थोड़ी देर में लौट आये और भोजन करने वापस बैठ गये। रुक्मणी ने कहा, "मुझे बहुत हैरानी में डाल दिया आपने। एक तो पागल की भांति उठकर भागे बीच भोजन में और मैंने पूछा तो उत्तर भी नहीं दिया। फिर द्वार तक जाकर वापस भी लौट ग्राये! क्या था प्रयोजन?"

कृष्ण ने कहा, "बहुत जरूरत आ गयी थी। मेरा एक प्यारा एक राजधानी से गुजर रहा था। राजधानी के लोग उसे पत्थर मार रहे थे। उसके माथे से खून बह रहा था। उसका सारा शरीर लहू-लुहान हो गया था। उसके कपड़े उन्होंने फाड़ डाले थे। भीड़ उसे घेरकर पत्थरों से मारे डाल रही थी और वह खड़ा हुआ गीत गा रहा था। न वह गालियों के उत्तर दे रहा था, न वह

पत्थरों के उत्तर दे रहा था। जरूरत पड़ गयी थी कि मैं जाऊं, क्योंकि वह कुछ भी नहीं कर रहा था। वह बिलकुल बेसहारा खड़ा था। मेरी एकदम जरूरत पड़ गयी।"

रुक्मणी ने पूछा, "लेकिन आप द्वार तक जाकर वापस कैसे लौट आये?" कृष्ण ने कहा कि "जब तक मैं द्वार तक पहुँचा, तब तक सब गड़बड़ हो गयी। वह आदमी बेसहारा न रहा। उसने पत्थर अपने हाथ में उठा लिये। अब वह खुद ही पत्थर का उत्तर दे रहा है। ग्रब मेरी कोई जरूरत नहीं है। इसलिए मैं वापस लौट आया हूँ। अब उस आदमी ने खुद ही अपना सहारा खोज लिया है। ग्रब वह बेसहारा नहीं है।"

यह कहानी सच हो कि झूठ। इस कहानी के सच और झूठ होने से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन एक बात मैं अपने अनुभव से कहता हूँ कि जिस दिन आदमी बेसहारा हो जाता है, उसी दिन परमात्मा के सारे सहारे उसे उपलब्ध हो जाते हैं। लेकिन हम इतने कमजोर हैं, हम इतने डरे हुए लोग हैं कि हम कोई-न-कोई सहारा पकड़े रहते हैं। और जब तक हम सहारा पकड़े रहते हैं, तब तक परमात्मा का सहारा उपलब्ध नहीं हो सकता है।

स्वतंत्र हुए बिना सत्य की उपलब्धि नहीं है। और सारी जंजीरों को तोड़े बिना कोई परमात्मा के द्वार पर अंगीकार नहीं होता है। लेकिन, हम कहेंगे—महापुरुषों को कैसे छोड़ दें? गांधी इतने प्यारे हैं, उनको कैसे छोड़ दें..?

कौन कहता है, गांधी प्यारे नहीं हैं? कौन कहता है, महावीर प्यारे नहीं हैं? कौन कहता है, कृष्ण प्यारे नहीं हैं? प्यारे हैं, यही तो मुश्किल है। इसी लिये छोड़ना मुश्किल हो जाता है। लेकिन प्यारों को भी छोड़ देना पड़ता है, तभी वह जो परम प्यारा है, वह उपलब्ध होता है।

महात्मा, परमात्मा ग्रौर मनुष्य की ग्रात्मा के बीच में खड़े हैं। और ये महात्मा अपनी इच्छा से नहीं खड़े हुए हैं। हमने जिनको महात्मा समझ लिया है, उनको खड़ा कर लिया है, और वे हमारे लिए दीवाल बन गये हैं। व्यक्तियों से मुक्त होने की जरूरत है, ताकि वह जो ग्रव्यक्ति है, वह जो महाव्यक्ति है, उसके और हमारे बीच कोई बाधा न रह जाये। शब्दों और सिद्धान्तों से मुक्त होने की जरूरत है, ताकि सत्य जैसा है, वैसा उसे हम देख सकें। अभी हम सत्य को वैसा ही देखते हैं, जैसा हम देखना चाहते हैं, जैसी हमारी इच्छा काम करती है, जैसी हमारी मान्यता काम करती है,

जैसे हमारे चश्मे काम करते हैं। अभी हम जो देखना चाहते हैं, वही देख लेते हैं; जो है, वह हमें दिखायी नहीं पड़ता और जो है, वही सत्य है।

कौन देख पायेगा उसे, जो है। उसे वही देख पाता है, जिसको अपना देखने का कोई आग्रह नहीं, कोई मत नहीं, कोई पंथ नहीं। जिसकी आँखों पर कोई चश्मा नहीं। जो सीधा--नग्न, शून्य, निर्वस्त्र—बिना सिद्धान्तों के खड़ा है। उसे वही दिखायी पड़ता है, जो है। और, वह जो है, मुक्तिदायी है। वह जो है, उसी का नाम जीवन है। वह जो है, उसी का नाम परमात्मा है।

यह पहला सूत्र ध्यान में रखना जरूरी है : अपने को बांधें मत, और जहां-जहां बंधें हों, कृपा करें, वहां से छूट जाएं। और यह मत पूछें कि छूटने के लिए क्या करना पड़ेगा। छूटने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। क्योंकि महापुरुष आपको नहीं बांधे हुये हैं कि आपको कुछ करना पड़े। आप ही उनको पकड़े हुए हैं। छोड़ दिया और वह गये। और कुछ भी नहीं करना है। अगर कोई दूसरा आपको बांधे हो, तो कुछ करना पड़ेगा। आप ही अगर पकड़े हों, तो जान लेना पर्याप्त है--और छूटना शुरू हो जाता है। कोई गांधी गांधीवादियों को नहीं बांधे हुए हैं। गांधी तो जिन्दगी भर कोशिश करते रहे कि गांधीवाद-जैसी कोई चीज खड़ी न हो जाये। लेकिन गांधीवादी बिना गांधी-वाद खड़ा किये कैसे रह सकते हैं! वाद चाहिए जिससे बंधा जा सके। अब वह उससे बंध गये हैं। अब उनसे पूछो, तो वे कहेंगे--कैसे छूटें? अगर आप पूछते हैं कि कैसे छूटें, तो फिर आप समझे नहीं। कोई दूसरा आपको बांधे हुए नहीं है। कृष्ण हिन्दुओं को नहीं बांधे हुए हैं--और न मुहम्मद मुसलमानों को—और न महावीर जैनों को। कोई किसी को बांधे हुए नहीं है। ये सारे तो ऐसे लोग हैं, जो छुटकारा चाहते हैं कि हर आदमी छूट जाये। लेकिन हम उनकी छायाओं को पकड़े हैं और बंधे हैं। हमें कोई बांधे हुए नहीं है, हम बंधे हुए हैं। और अगर हम बंधे हुए हैं, तो बात साफ है : कि हम छूटना चाहें, तो एक क्षण भी छोड़ने में नहीं लगता। तो एक क्षण भी गंवाने की ज़रूरत नहीं है। आप इस भवन के भीतर बंधे हुए आये थे। इस भवन के बाहर मुक्त होकर जा सकते हैं।

मैं अभी ग्वालियर में था। एक-डेढ़ वर्ष पहले, ग्वालियर के एक मित्र ने मुझे फोन किया कि मैं अपनी बूढ़ी मां को भी आपकी सभा में लाना चाहता हूँ, लेकिन मैं डरता हूँ। क्योंकि उनकी उम्र कोई नब्बे बर्ष है। चालीस बर्षों से

वह दिन-रात माला फेरती रहती हैं। सोती है, तो भी रात उनके हाथ में माला होती है। और आपकी बातें कुछ ऐसी हैं कि कहीं उनको चोट न लग जाये। मेरी समझ में नहीं आता कि इस उम्र में उनको लाना उचित है या नहीं...?

मैंने उन मित्र को खबर दी कि आप जरूर ले आयें। क्योंकि इस उम्र में अगर न लायें, तो हो सकता है, जब दुबारा मैं आऊं तो आपकी माँ से मेरा मिलना भी न हो पाये। इसलिए जरूर ले आयें। आप चाहे आयें या न आयें, माँ को जरूर ले आयें...।

वे मां को लेकर आये। दूसरे दिन मुझे उन्होंने खबर की कि बड़ी चमत्कार की बात हो गयी। जब मैं आया, तो आप माला के खिलाफ ही बोलने लगे। तो मुझे लगा कि यह आपको खबर करना तो ठीक नहीं हुआ। मैंने आपसे कहा कि मेरी मां माला फेरती है, तो आप माला के खिलाफ ही बोलने लगे! तो मुझे लगा कि आप मेरी मां को ही ध्यान में रखकर बोल रहे हैं। उसको नाहक चोट लगेगी, नाहक दुःख होगा। मैं डरा, पूरे रास्ते गाड़ी में मैंने मां से पूछा भी नहीं कि तेरे मन पर क्या असर हुआ? घर जाकर मैंने पूछा कि कैसा लगा, तो मेरी मां ने कहा—"कैसा लगा? मैं माला वहीं मीटिंग में ही छोड़ आयी। चालीस साल का मेरा भी अनुभव कहता है कि माला से मुझे कुछ भी नहीं मिला। लेकिन इतनी हिम्मत नहीं जुटा पा रही थी कि उसे छोड़ दूं। वह बात मुझे ख्याल आ गयी। माला तो मुझे पकड़े हुए नहीं थी, मैं ही उसे पकड़े हुए थी। मैंने उसे छोड़ दिया तो वह छूट गयी!"

तो आप यह मत पूछना कि कैसे हम छोड़ दें। कोई आपको पकड़े हुए नहीं है, आप ही मुट्ठी बांधे हुए हैं। छोड़ दें और वह छूट जाता है। और छूटते ही आप पायेंगे कि चित्त हल्का हो गया, निर्भार हो गया—तैयार हो गया--एक यात्रा के लिए।

इन चार दिनों में उस यात्रा के और सूत्रों पर हम बात करेंगे, लेकिन पहला सूत्र है--नो क्लिंगिग, कोई पकड़ नहीं। सब पकड़ छोड़ देनी है। पकड़ छोड़ते ही मन तैयार हो जाता है। पकड़ छोड़ते ही मन पंख फैला देता है। पकड़ छोड़ते ही मन सत्य की यात्रा के लिए आकांक्षा करने लगता है। और जो मत से बंधे हैं, वे डरते हैं सत्य को जानने से। मतवादी हमेशा सत्य को जानने से डरता है। क्योंकि जरूरी नहीं है कि सत्य उसके मत के पक्ष में

हो। सत्य विपरीत भी पड़ सकता है। मतवादी अपने मत को नहीं छोड़ना चाहता, इसलिए सत्य को जानने से वह वंचित रह जाता है।

मैं निरन्तर कहता हूं, दो तरह के लोग हैं दुनिया में। एक वे लोग हैं, जो चाहते हैं सत्य हमारे पीछे चले और दूसरे वे हैं, जो सत्य के पीछे खड़े हो जाते हैं। मतवादी सत्य को अपने पीछे चलाना चाहता है। वह कहता है कि मेरा मत सही है। और सत्यवादी कहता है, मैं सत्य के पीछे खड़ा हो जाऊंगा। मेरे मत का कोई मूल्य नहीं है। मूल्य है सत्य का।

जिसको सत्य के पीछे खड़ा होना है, उसे मत छोड़ देना पड़ेगा, क्योंकि सत्य को जानने में मत बाधा देगा, रोकेगा—और अड़चन डालेगा। अगर आप हिन्दू हैं, तो आप धार्मिक नहीं हो सकते हैं। अगर आप ईसाई हैं, तो आप धार्मिक नहीं हो सकते हैं। अगर धार्मिक होना है, तो ईसाई, हिन्दू और मुसलमान होने से मुक्ति आवश्यक है। अगर जीवन के सत्य को जानना है, तो जीवन के सम्बन्ध में जो भी मत पकड़ा है, उससे मुक्ति आवश्यक है।

···वह बूढ़ी औरत अद्‌भुत थी। छोड़ गयी माला। माला की कीमत चार आना तो रही ही होगी। आप जो सिद्धान्त पकड़े हैं, उसकी कीमत चार आना भी नहीं है। उसको ऐसे ही छोड़ा जा सकता है, आंख मूंद कर। और छोड़कर आप नुकसान में नहीं पड़ जायेंगे। छोड़ते ही आप पायेंगे कि जो छूट गया है, वह सत्य की तरफ जाने में बाधा था। और पहली बार आंख खुलेगी कि मैं जीवन को वैसा देख सकूं, जैसा वह है।

यह पहला सूत्र है। इस सम्बन्ध में जो भी प्रश्न हों, वह आप लिखकर दे देंगे, तथा अन्य प्रश्न भी लिखकर दे देंगे, ताकि सुबह की चर्चाओं में आपके प्रश्नों की बात हो सके—और सांझ को मैं और सूत्रों की बात करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शान्ति से सुना। उसके लिए बहुत अनुग्रहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा का प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

दूसरा प्रवचन

बड़ौदा, १३ फरवरी, १९६९, संध्या

भीड़ से, समाज से—दूसरों से मुक्ति

मेरे प्रिय आत्मन,

मनुष्य का जीवन जैसा हो सकता है, मनुष्य जीवन में जो पा सकता है, मनुष्य जिसे पाने के लिए पैदा होता है--वही उससे छूट जाता है--वही उसे नहीं मिल पाता है। कभी किसी एक मनुष्य के जीवन में--किसी कृष्ण, किसी राम, किसी बुद्ध, किसी गांधी के जीवन में सौन्दर्य के फूल खिलते हैं और सत्य की सुगंध फैलती है। लेकिन, शेष सारी मनुष्यता ऐसे ही मुरझा जाती है और नष्ट हो जाती है।

कौन-सा दुर्भाग्य है मनुष्य के ऊपर...कौन-सी कठिनाई है? करोड़ों बीजों में से अगर एक बीज में अंकुर आये और शेष बीज, बीज ही रहकर सड़ जायें और समाप्त हो जायें, तो यह कोई सुखद स्थिति नहीं हो सकती। और अगर मनुष्य जाति के पूरे इतिहास को उठाकर देखें, तो अंगुलियों पर गिने जा सकें--ऐसे थोड़े-से मनुष्य पैदा होते हैं, जिनकी कथा इतिहास में शेष है। शेष सारी मनुष्यता की कोई भी कथा इतिहास में शेष नहीं है। शेष सारे मनुष्य बिना किसी सत्य को जाने, बिना किसी सौन्दर्य को जाने ही मर जाते हैं। क्या ऐसे जीवन को हम जीवन कहें?

एक फकीर का मुझे स्मरण आता है। कभी वह सम्राट था, लेकिन फिर वह फकीर हो गया था। वह पैदा तो सम्राट हुआ था, लेकिन फिर फकीर हो गया था। और जिस राजधानी में वह पैदा हुआ था, उसी राजधानी के बाहर एक झोपड़े में रहने लगा था। लेकिन उसके झोपड़े पर अक्सर उपद्रव होते रहते थे। जो भी उसके झोपड़े पर आता, उसी से उसका झगड़ा हो जाता।

रास्ते पर था उसका झोपड़ा और गांव से कोई चार मील बाहर था—चौराहे पर था। आने-जानेवाले राहगीर उससे बस्ती का रास्ता पूछते, तो वह कहता—'बस्ती ही जाना चाहते हो, तो बायीं तरफ भूलकर भी मत जाना, दायीं तरफ के रास्ते से जाना, तो बस्ती पहुँच जाओगे।' राहगीर उसकी बात मानकर दायीं तरफ के रास्ते से जाते, और दो-चार मील चलकर मरघट पर पहुँच जाते—वहां, जहां बस्ती नहीं, सिर्फ कब्रें थीं। राहगीर क्रोध में वापस लौटते और आकर फकीर से झगड़ा करते—कि तुम पागल तो नहीं हो? हमने पूछा था बस्ती का रास्ता, और तुमने हमें मरघट में भेज दिया? तो वह फकीर हंसने लगता और कहता तुम्हें मेरी परिभाषा मालूम नहीं है। मैं तो मरघट को बस्ती ही कहता हूँ। क्योंकि तुम जिसे बस्ती कहते हो, उसमें तो कोई भी ज्यादा दिन बसता नहीं। कोई आज उजड़ जाता है और कोई कल। वहां तो मौत रोज आती है और किसी-न-किसी को उठा ले जाती है। वह, जिसे तुम बस्ती कहते हो, वह तो मरघट है। वहां तो मृत्यु की प्रतीक्षा करने वाले लोग बसते हैं। वे प्रतीक्षा करते रहते हैं मृत्यु की। मैं तो उसी को बस्ती कहता हूँ, जिसे तुम मरघट कहते हो; क्योंकि वहां जो एक बार बस गया, वह बस गया; फिर उसकी मौत नहीं होती। बस्ती मैं उसे कहता हूँ, जहाँ बस गये लोग फिर उजडते नहीं, वहाँ से हटते नहीं।

लगता है पागल रहा होगा वह फकीर। लेकिन क्या दुनिया के सारे समझदार लोग पागल रहे हैं? दुनिया के सारे ही समझदार लोग एक ही बात कहते रहे हैं कि जिसे हम जीवन समझते हैं, वह जीवन नहीं है। और चूंकि हम गलत जीवन को जीवन समझ लेते हैं, इसलिए जिसे हम मृत्यु समझते हैं, वह भी मृत्यु नहीं है। हमारा सब कुछ ही उल्टा है। हमारा सब कुछ ही अज्ञान से भरा हुआ और अंधकार से पूर्ण है। फिर जीवन क्या है? और उस जीवन को जानने और समझने का द्वार और मार्ग क्या है?

बुद्ध के संघ में एक बूढ़ा भिक्षु रहता था। बुद्ध ने एक दिन उस बूढ़े भिक्षु को पूछा कि 'मित्र, तेरी उम्र क्या है? उस भिक्षु ने कहा, 'आप भलीभांति जानते हैं, फिर भी पूछते हैं? मेरी उम्र पांच वर्ष है?' बुद्ध बहुत हैरान हुए और कहने लगे, 'कैसी मजाक करते हो?... सिर्फ पांच वर्ष! पचहत्तर वर्ष से कम तो तुम्हारी उम्र क्या होगी, पांच वर्ष कैसे कहते हो?' बूढ़े भिक्षु ने कहा, 'हां, सत्तर वर्ष भी जिया हूं, लेकिन उन्हें जीने के वर्ष नहीं कह सकता। उसे जीवन कैसे कहूं। पिछले पांच वर्षों से ही जीवन को जाना है, इसलिए पांच

ही वर्ष की उम्र गिनता हूं। वे सत्तर वर्ष तो बीत गये—नींद में, बेहोशी में, मूर्छा में। उनकी गिनती कैसे करूं। नहीं जानता था जीवन को, तो फिर उनकी भी गिनती कर लेता था। अब, जब से जीवन को जाना है, तब से उनकी गिनती करनी बहुत मुश्किल हो गयी है।'

यही मैं आपसे भी कहना चाहता हूं कि जिसे हम अब तक जीवन जानते रहे हैं, वह जीवन नहीं है—वह एक निद्रा, एक मूर्छा है; एक दुख की लम्बी कथा है; एक अर्थहीन खालीपन, एक मीनिंगलेस एम्पटिनेस है। जहाँ कुछ भी नहीं है हमारे हाथों में। जहाँ न हमने कुछ जाना है और न कुछ जिया है। फिर वह जीवन कहां है, जिसकी हम बात करें। जीवन के उसी एक सूत्र पर सुबह मैंने बात की है, दूसरे सूत्र पर अभी बात करेंगे।

दूसरे सूत्र को समझने के लिए एक बात समझ लेनी जरूरी है कि मनुष्य का जीवन भीतर से बाहर की तरफ आता है—बाहर से भीतर की तरफ नहीं। एक बीज में जब अंकुर आता है, तो वह भीतर से आता है। अंकुर बड़ा होता है तो उसमें पत्ते और फूल लगते हैं, फल लगते हैं। उस छोटे-से बीज से एक बड़ा वृक्ष निकलता है, जिसके नीचे हजारों लोग विश्राम करते हैं। एक छोटे-से बीज में इतना बड़ा वृक्ष छिपा होता है। लेकिन, यह वृक्ष बाहर से नहीं आता है—यह अंधा भी कह सकता है। यह वृक्ष भीतर से आता है, उस छोटे-से बीज से आता है।

जीवन भी छोटे-से बीज से ही भीतर से बाहर की तरफ फैलता है। और हम सारे लोग जीवन को खोजते हैं बाहर। जीवन आता है भीतर से—फैलता है बाहर की तरफ। बाहर जीवन का विस्तार है, जीवन का केन्द्र नहीं। जीवन की मूल ऊर्जा, जीवन का मूल स्रोत भीतर है और जीवन की शाखाएं बाहर हैं। और हम सब जीवन को खोजते हैं बाहर, इसलिए जीवन से वंचित रह जाते हैं, जीवन को नहीं जान पाते हैं। पत्तों को जान लेते हैं, पत्तों को पहचान लेते हैं, लेकिन पत्ते?...पत्ते जड़ें नहीं हैं।

माओत्से-तुंगने अपने बचपन की एक छोटी-सी घटना लिखि है। लिखा है कि मेरी मां का एक बगीचा था। उस बगीचे में ऐसे सुन्दर फूल खिलते थे कि दूर-दूर से लोग उन्हें देखने आते थे। एक बार मेरी बूढ़ी मां बीमार पड़ गयी। वह बहुत चिन्तित थी—अपनी बीमारी के लिए नहीं, बगीचे में खिले फूलों के लिए—कि बगीचे में खिले फूल कुम्हला न जायें। वह इतनी बीमार थी कि

बिस्तर से बाहर नहीं निकल सकती थी। मैंने माँ से कहा, तुम घबड़ाओ मत, मैं फिक्र कर लूंगा फूलों की। और मैंने पन्द्रह दिन तक फूलों की बहुत फिक्र की। एक-एक पत्ते की धूल झाड़ो, एक-एक पत्ते को पोंछा और साफ किया। एक-एक पत्ते को सम्हाला, एक-एक फूल की फिक्र की, लेकिन न-मालूम क्यों फूल मुरझाते गये, पत्ते सूखते गये और सारा बगीचा सूखता गया। पन्द्रह दिन बाद बूढ़ी मां बाहर आयी और बाहर आकर उसने देखा कि उसकी सारी बगिया उजड गयी है। वृक्ष बेहोश होकर गिर पड़े है, पत्ते सूख गये हैं, फूल कुम्हला गये हैं, कलियां कलियां ही रह गयी हैं, फूल नहीं बनी हैं। मां पूछने लगी, "तू क्या करता था पन्द्रह दिन तक? सुबह से रात तक सोता भी नहीं था। यह क्या हुआ?" मेरी आंखों में आंसू आ गये। मैंने कहा, "मैंने बहुत फिक्र की। मैंने एक-एक पत्ते की धूल झाड़ी। मैंने एक-एक फूल पर पानी छिड़का। मैंने एक-एक पौधे को गले लगाकर प्रेम किया, लेकिन न-मालूम कैसे पागल पौधे हैं, सब कुम्हला गये हैं, सब सूख गये हैं। यूं तो मां की आंखों में बगिया को देखकर आँसू थे, लेकिन मेरी हालत देखकर वह हंसने लगी और उसने कहा, 'पागल, फूलों के प्राण फूलों में नहीं होते, उनकी जड़ों में होते हैं, जो दिखायी नहीं पडती हैं और जमीन के नीचे होती हैं। पानी फूलों को नहीं देना पड़ता है, जड़ों को देना पड़ता है। फिक्र पत्तों की नहीं करनी पड़ती, जड़ों की करनी पड़ती है। पत्तों की लाख फिक्र करें तो भी जड़ें कुम्हला जायेंगी और पत्ते भी सूख जायेंगे। और जड़ों की थोड़ी-सी भी फिक्र करें और पत्तों की, फूलों की कोई भी फिक्र न करें, तो भी पत्ते फलते रहेंगे, फूल खिलते रहेंगे, सुगंध उड़ती रहेगी। मैंने पूछा, "लेकिन जड़ कहां है? वह तो दिखायी नहीं पड़ती है!"

...हम सभी भी यही पूछते हैं--जीवन कहां है? वह तो दिखायी नहीं पड़ता है। वह बाहर नहीं छिपा है; वह अपने ही भीतर है--अपनी ही जड़ों में। बाहर जहां दिखायी पड़ता है सब कुछ, वहां पत्ते हैं, शाखाएं हैं। भीतर, जहां दिखायी नहीं पड़ता, जहां घोर अंधकार है, वहां जड़ें हैं।

दूसरा सूत्र समझ लेना जरूरी है और वह यह कि जीवन बाहर नहीं, भीतर है। विस्तार बाहर है, प्राण भीतर हैं। फूल बाहर खिलते हैं, जड़ें भीतर हैं। और जड़ों के सम्बन्ध में हम सब भूल गये हैं। माओ पर हम हंसेंगे कि नादान था वह लड़का बहुत, लेकिन हम अपने पर नहीं हंसते हैं कि

हम जीवन के बगीचे में उतने ही नादान हैं।

...और, अगर आदमी के चेहरे से मुस्कराहट चली गयी है...और आदमी की आँखों से शान्ति खो गयी है...और आदमी के हृदय में फूल नहीं लगते हैं...और आदमी की जिन्दगी में संगीत नहीं बजता है...और आदमी की जिन्दगी एक बे-रौनक उदासी हो गयी है, तो फिर हम पूछते हैं कि कितना तो हम सम्हालते हैं, कितने अच्छे मकान बनाते हैं, कितने अच्छे रास्ते बनाते हैं, कितने अच्छे कपड़े निर्मित करते हैं, कितनी अच्छी शिक्षा देते हैं--सब तो हम करते हैं, लेकिन आदमी फिर भी कुम्हलाता क्यों चला जाता है? यह हम वही पूछते हैं, जो उस लड़के ने पूछा था कि मैंने एक-एक पत्ते को सम्हाला, लेकिन फूल?...फूल क्यों कुम्हला गये? पौधे क्यों कुम्हला गये?

आदमी कुम्हला गया है, क्योंकि वह बाहर सम्हालता रहा है। और ध्यान रहे कि जिनको हम भौतिकवादी कहते हैं, वे ही केवल बाहर नहीं देखते--जिनको हम अध्यात्मवादी कहते हैं, दुर्भाग्य है कि वे भी बाहर ही देखते हैं और बाहर ही सम्हालते हैं। भौतिकवादी तो बाहर सम्हालेगा, क्योंकि भौतिकवादी मानता है कि 'भीतर-जैसी' कोई चीज ही नहीं है। भीतर है ही नहीं। भौतिकवादी कहता है, 'भीतर' कोरा शब्द है। भीतर कुछ भी नहीं है।

हालांकि यह बड़ी अजीब बात मालूम पड़ती है, क्योंकि जिसका भी बाहर होता है, उसका भीतर अनिवार्य रूप से होता है। यह असंभव है कि बाहर-ही-बाहर हो और भीतर न हो। अगर भीतर न हो, तो बाहर नहीं हो सकता। अगर एक मकान की बाहर की दीवाल है, तो उसका भीतर भी होगा। अगर एक पत्थर की बाहर की रूप-रेखा है, तो भीतर भी कुछ होगा। बाहर की जो रूप-रेखा है, वह भीतर को ही घेरने वाली रूप-रेखा होती है। बाहर का अर्थ है, भीतर को घेरने वाला। और अगर भीतर न हो तो बाहर कुछ भी नहीं हो सकता। लेकिन भौतिकवादी कहता है कि भीतर कुछ भी नहीं, इसलिए भौतिकवादी को तो क्षमा भी किया जा सकता है, लेकिन अध्यात्मवादी भी सारी चेष्टा बाहर की करता है, वह भी कहता है कि ब्रह्मचर्य साधो; वह भी कहता है, अहिंसा साधो; वह भी कहता है, सत्य साधो; वह भी गुणों को साधने की कोशिश करता है। अहिंसा, ब्रह्मचर्य, प्रेम, करुणा, दया--ये सब फूल हैं, जड़ इनमें से कोई भी नहीं है।

जड़ समझ में आ जाये, तो अहिंसा अपने-आप पैदा हो जाती है। और

अगर जड़ समझ में न आये, तो अहिंसा को हम जिन्दगी भर सम्हालें, फिर भी अहिंसा पैदा नहीं होती। बल्कि, अहिंसा के पीछे निरन्तर हिंसा खड़ी रहती है। और वे हिंसक बेहतर हैं, जो बाहर भी हिंसक हैं; लेकिन वे अहिंसक बहुत खतरनाक हैं जो बाहर तो अहिंसक, लेकिन भीतर हिंसक हैं।

जिन मुल्कों ने अध्यात्म की बहुत बात की है, उन्होंने बाहर से एक थोथा अध्यात्म पैदा कर लिया है। वैसा जो थोथा अध्यात्म है, वह बाहर के गुणों पर ज़ोर देता है, अन्तस् पर नहीं। वह कहता है—सेक्स छोड़ो, ब्रह्मचर्य साधो। वह कहता है—झूठ को छोड़ो, सत्य को साधो। वह कहता है—कांटे हटा लो और फूल पैदा करो। लेकिन इसकी बिलकुल फिक्र नहीं करता है कि फूल जो जड़ों से पैदा होते हैं, वे जड़ें कहाँ हैं। और अगर जड़ें न सम्हाली जायें, तो फूल पैदा होनेवाले नहीं हैं। हां, कोई चाहे तो बाज़ार से कागज़ के फूल लाकर ऊपर चिपका ले सकता है। और दुनिया में अध्यात्म के नाम से कागज़ के फूल चिपकाये हुए लोगों की भीड़ खड़ी हो गयी है। और ऐसे लोगों के कारण ही भौतिकवाद को दुनिया में नहीं हराया जा पा रहा है; क्योंकि भौतिकवाद कहता है, 'यही है तुम्हारा अध्यात्म? ये कागज के फूल?' और इन कागज के फूलों को देखकर भौतिकवादी को लगता है कि नहीं है कुछ भीतर, सब ऊपर की बातें हैं।

अध्यात्म के नाम से बाहर का आरोपण चल रहा है, कल्टिवेशन और इम्पोजीशन चल रहा है। आदमी, भीतर जो सोया हुआ है, उसे जगाने की चिन्ता में नहीं है, बाहर से अच्छे वस्त्र पहन लेने की चिन्ता में है। इससे एक अद्भुत धोखा पैदा हो गया है। दुनिया में या तो भौतिकवादी हैं और या फिर झूठे अध्यात्मवादी हैं। दुनिया में सच्चा आदमी खोजना मुश्किल होता चला गया है। हां, कभी कोई एकाध सच्चा आदमी पैदा होता है, लेकिन उस आदमी को भी हम नहीं समझ पाते हैं, क्योंकि उसको भी हम बाहर से देखते हैं कि वह क्या करता है, कैसे चलता है, क्या पहनता है, क्या खाता है? और इसी आधार पर हम निर्णय लेते हैं कि वह भीतर से क्या होगा।

नहीं, फूल के आधार पर जड़ों का पता नहीं चलता है। फूल के रंग देखकर जड़ों का कुछ पता नहीं चलता है; पत्तों से जड़ों का कुछ भी पता नहीं चलता है। जड़ें कुछ बात ही और हैं। वह आयाम ही दूसरा है; वह डायमेन्शन ही दूसरा है। लेकिन सब बाहर से सम्हालने की, वस्त्रों को सम्हालने की

लम्बी कथा चल रही है। और हमने एक झूठा आदमी पैदा कर लिया है। इस झूठे आदमी का कोई भी जीवन नहीं होता, इसलिए इस झूठे आदमी को हम थोड़ा समझ लें; क्योंकि यह झूठा आदमी कोई और नहीं है, हम सभी झूठे आदमी हैं।

मैंने सुना है, एक किसान ने एक खेत में एक झूठा आदमी बनाकर खड़ा कर दिया था। किसान खेतों में झूठा आदमी बनाकर खड़ा कर देते हैं। कुरता पहना देते हैं, हण्डियां लटका देते हैं, मुंह बना देते हैं। जंगली जानवर उस झूठे आदमी को देखकर डर जाते हैं, भाग जाते हैं। पक्षी? पक्षी खेत में आने से डरते हैं। एक दार्शनिक उस झूठे आदमी के पास से निकलता था। तो उस दार्शनिक ने उस झूठे आदमी को पूछा कि दोस्त! सदा यहीं खड़े रहते हो? धूप आती है, वर्षा आती है, सर्दियां आती हैं, रात आती है, अंधेरा हो जाता है—तुम यहीं खड़े रह जाते हो? ऊबते नहीं, घबराते नहीं, परेशान नहीं होते? वह झूठा आदमी दार्शनिक की बातें सुनकर बहुत हंसने लगा। उसने कहा, 'परेशान! परेशान मैं कभी भी नहीं होता। दूसरों को डराने में इतना मजा आता है कि वर्षा भी गुजार देता हूं, धूप भी गुजार देता हूं, रातें भी गुजार देता हूं। दूसरों को डराने में बहुत मजा आता है।

दूसरों को प्रभावित देखकर, भयभीत देखकर बहुत मज़ा आता है। 'दूसरों की आंखों में सच्चा दिखायी पड़ता हूं'—बस, बात खत्म हो जाती है। पक्षी डरते हैं कि मैं सच्चा आदमी हूं। जंगली जानवर भय खाते हैं कि मैं सच्चा आदमी हूं। उनकी आंखों में देखकर कि मैं सच्चा हूं, बहुत आनन्द आता है।

उस झूठे आदमी की बातें सुनकर दार्शनिक ने कहा, "बड़े आश्चर्य की बात है। तुम जैसी कहते हो, वैसी हालत मेरी भी है। मैं भी दूसरों की आँखों में देखता हूं कि मैं क्या हूं और उसी से आनन्द लेता चला जाता हूं!"

तो वह झूठा आदमी हंसने लगा और उसने कहा, "तब फिर मैं समझ गया कि तुम भी एक झूठे आदमी हो।"

झूठे आदमी की एक पहचान है : वह हमेशा दूसरों की आँखों में देखता है कि कैसा दिखायी पड़ता है। उसे इससे मतलब नहीं कि वह क्या है। उसकी सारी चिन्ता, उसकी सारी चेष्टा यही होती है कि वह दूसरों को कैसा दिखायी पड़ता है; वे जो चारों तरफ देखने वाले लोग हैं, वे उसके बारे में क्या कह रहे हैं।

यह जो बाहर का थोथा अध्यात्म है, यह लोगों की चिन्ता से पैदा हुआ है। लोग क्या कहते हैं। और जो आदमी यह सोचता है कि लोग क्या कहते हैं, वह आदमी कभी भी जीवन के अनुभव को उपलब्ध नहीं हो सकता है। जो आदमी यह फिक्र करता है कि भीड़ क्या कहती है, और जो भीड़ के हिसाब से अपने व्यक्तित्व को निर्मित करता है, वह आदमी भीतर जो सोये हुए प्राण हैं, उसको कभी नहीं जगा पायेगा। वह बाहर से ही वस्त्र ओढ़ लेगा। वह लोगों की आँखों में भला दिखायी पड़ने लगेगा और बात समाप्त हो जायेगी।

हम वैसे दिखायी पड़ रहे हैं, जैसे हम नहीं हैं। हम वैसे दिखायी पड़ रहे हैं, जैसे हम कभी भी नहीं थे। हम वैसे दिखायी पड़ रहे हैं, जैसा दिखायी पड़ना सुखद मालूम पड़ता है। लेकिन वैसे हम नहीं हैं।

मैंने सुना है, लंदन के एक फोटोग्राफर ने अपनी दुकान के सामने एक बड़ी तख्ती लगा रखी थी। और उस तख्ती पर लिख रखा था कि तीन तरह के फोटो यहां उतारे जाते हैं। पहले तरह के फोटो का दाम सिर्फ पांच रुपया है। और वह फोटो ऐसा होगा, जैसे आप हैं। दूसरी तरह के फोटो का दाम दस रुपया है। और वह ऐसा होगा, जैसे आप दिखायी पड़ते हैं। तीसरी तरह के फोटो का दाम पन्द्रह रुपया है। और वह ऐसा होगा, जैसे आप दिखायी पड़ना चाहते हैं।

गांव का एक आदमी आया था फोटो निकलवाने, तो वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। वह पूछने लगा, तीन-तीन तरह के फोटो एक आदमी के कैसे हो सकते हैं! फोटो तो एक ही तरह का होता है। एक ही आदमी के तीन तरह के फोटो कैसे हो सकते हैं? और वह ग्रामीण पूछने लगा कि जब पांच रुपये में फोटो उतर सकता है, तो पन्द्रह रुपये में कौन उतरवाता होगा?

फोटोग्राफर बोला—'नासमझ, नादान, तू पहला आदमी आया है, जो पहली तरह का फोटो उतरवाने का विचार कर रहा है। अब तक पहली तरह का फोटो उतरवाने वाला कोई आदमी नहीं आया। जिसके पास पैसे की कमी होती है, तो वह दूसरी तरह का फोटो उतरवाता है। नहीं तो तीसरी तरह के ही लोग फोटो उतरवाते हैं। पहली तरह का तो कोई उतरवाता ही नहीं। कोई आदमी नहीं चाहता कि वह वैसा दिखायी पड़े, जैसा कि वह है; दूसरों को भी वैसा दिखायी न पड़े और खुद को भी वैसा दिखायी न पड़े, जैसा कि वह है।

तो फिर भीतर की यात्रा नहीं हो सकती है। क्योंकि भीतर तो सत्य की सीढ़ियों पर चढ़ कर ही यात्रा शुरू होती है, असत्य की सीढ़ियों पर चढ़कर नहीं। और ध्यान रहे, अगर बाहर की यात्रा करनी हो, तो असत्य की सीढ़ियों के बिना बाहर कोई यात्रा नहीं हो सकती। अगर दिल्ली पहुँचना हो, तो असत्य की सीढ़ियों पर चढ़े बिना कोई यात्रा नहीं हो सकती है। और भीतर जाना हो, तो सत्य की सीढ़ियों पर चढ़े बिना कोई यात्रा नहीं हो सकती है। अगर बहुत धन के अम्बार लगाने हों, तो असत्य की यात्रा के सिवाय कोई यात्रा नहीं है। अगर बहुत यश पाना हो, प्रतिष्ठा पानी हो, मित्रता पानी हो, तो असत्य के सिवाय कोई रास्ता नहीं है।

बाहर की सारी यात्रा की सीढ़ियाँ असत्य की ईंटों से निर्मित हैं। और भीतर की यात्रा सत्य की सीढ़ियाँ चढ़कर करनी पड़ती हैं। और इस बात को जानना बहुत कठिन पड़ता है कि 'मैं सच में क्या हूं?' हम सदा उसे दबाते हैं, जो हम नहीं हैं। हम शरीर को तो बहुत देखते हैं आईने को सामने रखकर, लेकिन वह जो भीतर है, उसके सामने कभी आईना नहीं रखते। और अगर कोई आईना सामने ले आये, तो हम बहुत नाराज हो जाते हैं। किसी के आईना दिखाने पर हम आईना भी तोड़ देते हैं और उस आदमी का सिर भी तोड़ देते हैं।

कोई आदमी भीतर के आदमी को देखने के लिए तैयार नही है। इसलिए दुनिया में जिन लोगों ने भी हमारे भीतर के असली आदमी को दिखाने की कोशिश की है, उनके साथ हमने वह व्यवहार किया है, जो हम दुश्मन के साथ करते हैं। जीसस को हम सूली पर लटका देते हैं, सुकरात को हम जहर पिला देते हैं। जो भी हमारी असलियत को दिखाने की कोशिश करता है, उससे हम बहुत नाराज हो जाते हैं; क्योंकि वह हमारी नग्नता को उघाड़कर हमारे सामने रख देता है। और हम—हम धीरे-धीरे भूल ही गये हैं कि वस्त्रों के भीतर हम नग्न ही हैं। हम धीरे-धीरे समझने लगे हैं कि हम वस्त्र ही हैं। भीतर एक नंगा आदमी भी है, उसे हम धीरे-धीरे भूल गये हैं—बिलकुल भूल गये हैं। उसको हमें कोई याद नहीं है, और वही हमारी असलियत है। उस असलियत पर पैर रखे बिना, और भी जो गहरी असलियतें हैं भीतर, उन तक पहुंचा नहीं जा सकता है। इसलिए दूसरा सूत्र है—'मैं जैसा हूं, उसका साक्षात्कार।' लेकिन वह हम नहीं करते हैं। हम तो दबा-दबाकर अपनी एक झूठी तस्वीर, एक फॉल्स इमेज खड़ी करने की कोशिश

करते हैं।

भीतर हिंसा भरी है और आदमी पानी छानकर पियेगा—और कहेगा कि मैं अहिंसक हूं। भीतर हिंसा की आग जल रही है, भीतर सारी दुनिया को मिटा देने का पागलपन है, भीतर विध्वंस है, भीतर वॉयलेंन्स है और एक आदमी रात खाना नहीं खायेगा—और सोचेगा कि मैं अहिंसक हूँ।

हम सस्ती तरकीब में पहुंच गये हैं कुछ हो जाने की। इतना सस्ता मामला नहीं है। आप क्या खाते हैं, क्या पीते हैं—इससे आप अहिंसक नहीं होते। हां, आप अहिंसक हो जायेंगे तो आपका खाना-पीना जरूर बदल जायेगा। लेकिन खाना-पीना बदल लेने से आप अहिंसक नहीं हो जाते। यह बात जरूर सच है कि आपके भीतर से प्रेम आयेगा, तो आपका बाहर का व्यक्तित्व बदल जायेगा। लेकिन बाहर का व्यक्तित्व बदल लेने से भीतर से प्रेम नहीं आता है।

उल्टा सच नहीं है। अगर प्रेम आ जाये, तो मैं किसी को गले से लगा सकता हूं; लेकिन गले से लगा लेने पर यह मत सोचना कि प्रेम आ जायेगा। वैसे गले लगा लेने से कवायद तो हो जाती हैं—प्रेम-व्रेम नहीं आता, लेकिन लोग सोचते हैं, गले लगाने से प्रेम आ जाता है। तो गले लगाने की तरकीब सीख लो, बात खत्म हो जाती है। तो एक आदमी गले से लगाने की तरकीब सीख लेता है और सोचता है कि प्रेम आ गया।

गले लगाने से प्रेम के आने का क्या सम्बन्ध हो सकता है...?

कोई भी सम्बन्ध नहीं हो सकता। श्रद्धा भीतर हो, आदर भीतर हो, तो आदमी झुक जाता है, लेकिन झुकने से श्रद्धा का जन्म नहीं हो जाता—कि आप झुक गये तो श्रद्धा आ गयी। आपका शरीर तो झुक जायेगा, पर आप पीछे-अकड़े हुए खड़े रहेंगे। देख लेना ख्याल से—जब मंदिर में मूर्ति के सामने झुकें—तब देख लेना कि आप पीछे खड़े हैं और सिर्फ शरीर झुक रहा है। आप खड़े ही हुए हैं। आप खड़े होकर चारों तरफ देख रहे हैं मंदिर में कि लोग मुझे देख रहे हैं, या नहीं।

शरीर को झुकने से क्या अर्थ है? लेकिन, हम जो हैं उसे छिपाने की हमने अच्छी तरकीबें खोज ली हैं। एक आदमी पाप करता है और कौन आदमी पाप नहीं करता—और फिर गंगा जाकर स्नान कर आता है। और निश्चिंत हो जाता है कि गंगा स्नान से पाप मिट गये।

रामकृष्ण के पास जाकर एक आदमी ने कहा—"मैं गंगा स्नान को जा रहा हूं, आशीर्वाद दे दें!"

रामकृष्ण ने पूछा—"किसलिए कष्ट कर रहा है? किसलिए गंगा को तकलीफ देने जा रहा है? मामला क्या है? गंगा भी घबड़ा गयी होगी। आखिर कितना जमाना हो गया उसे पापियों के पाप धोते-धोते।

वह आदमी कहने लगा—हां, उसी के लिए जा रहा हूँ कि पापों से छुटकारा हो जाये। आशीर्वाद दे दें।"

रामकृष्ण ने कहा—"तुझे पता है, गंगा के किनारे जो बड़े-बड़े झाड़ हैं, वे जानते हो, किसलिए हैं?"

उस आदमी ने कहा—"किसलिए हैं, मुझे पता नहीं।"

रामकृष्ण ने कहा—"पागल, तू गंगा में स्नान करेगा और पाप बाहर निकलकर झाड़ों पर बैठ जायेंगे। फिर तू स्नान करके निकलेगा तो वे झाड़ों पर बैठे तेरा रास्ता देखते होंगे कि आ गये बेटे, अब हम तुम पर फिर सवार होते हैं। वे झाड़ इसीलिए हैं गंगा के किनारे।

"बेकार मेहनत मत कर। तुझे भी तकलीफ होगी—गंगा को भी, पापों को भी, वृक्षों को भी। इस सस्ती तरकीब से कुछ हल नहीं होगा।"

...लेकिन हम सब सस्ती तरकीबें ही खोज रहे हैं कि गंगा स्नान कर लेंगे। और गंगा-स्नान जैसे ही मामले हैं हमारे सारे। बाहर से एक व्यक्तित्व खड़ा करने की हम कोशिश करते हैं—उसे झुठलाने के लिए, जो हम भीतर हैं।

टॉल्स्टॉय एक दिन सुबह-सुबह चर्च गया। रास्ते पर कोहरा पड़ रहा था। पांच ही बजे होंगे। जल्दी गया था कि अकेले में कुछ प्रार्थना कर लूंगा। चर्च में जाकर देखा कि उससे पहले भी कोई आया हुआ है। अंधेरे में, चर्च के द्वार पर हाथ जोड़े हुए एक आदमी खड़ा था। और वह आदमी कह रहा था कि 'हे परमात्मा, मुझसे ज्यादा पापी कोई भी नहीं है। मैंने बहुत पाप किये हैं; मैंने बहुत बुराइयां की हैं; मैंने बड़े अपराध किये हैं; मैं हत्यारा हूं। मुझे क्षमा करना।'

टॉल्स्टॉय ने देखा कि कौन आदमी है, जो अपने मुंह से कहता है कि मैंने बहुत पाप किये हैं, और मैं हत्यारा हूं। कोई आदमी ऐसा नहीं कहता कि मैं

हत्यारा हूं। बल्कि, किसी हत्यारे से यह कहो कि तुम हत्यारे हो, तो वह तलवार निकाल लेता है कि कौन कहता है, मैं हत्यारा हूं! हत्या करने को तैयार हो जाते हैं, लेकिन यह मानने को राजी नहीं होता कि मैं हत्यारा हूं। ...यह कौन आदमी आ गया है?

टॉल्स्टॉय धीरे-से उसके पास गया। आवाज पहचानी हुई मालूम पड़ी। 'यह तो नगर का सबसे बड़ा धनपति है!' उसकी सारी बातें टॉल्स्टॉय खड़े होकर सुनता रहा। जब वह आदमी प्रार्थना कर पीछे मुड़ा, तो टॉल्स्टॉय को पास खड़ा देखकर उसने पूछा—"क्या तुमने मेरी सारी बातें सुन ली हैं?"

टॉल्स्टाय ने कहा—"मैं धन्य हो गया तुम्हारी बातें सुनकर। तुम कितने पवित्र आदमी हो कि अपने सब पापों को तुमने इस तरह खोलकर रख दिया!" तो उस धनपति ने कहा—"ध्यान रहे, यह बात किसी से कहना मत! यह बात मेरे और परमात्मा के बीच हुई है। मुझे पता भी नहीं था कि तुम यहां खड़े हुए हो। अगर किसी दूसरे तक यह बात पहुंची, तो तुम पर मानहानि का मुकदमा दायर कर दूंगा।"

टॉल्स्टॉय ने कहा—"अरे, अभी तो तुम कह रहे थे कि...

"...वह सब अलग बात है। वह तुमसे मैंने नहीं कहा। वह दुनिया में कहने के लिए नहीं है। वह मेरे और परमात्मा के बीच की बात है...!"

चूंकि परमात्मा कहीं भी नहीं है, इसलिए उसके सामने हम नंगे खड़े हो सकते हैं। लेकिन जो आदमी जगत् के सामने सच्चा होने को राजी नहीं है, वह परमात्मा के सामने भी कभी सच्चा नहीं हो सकता है। हम अपने ही सामने सच्चे होने को राजी नहीं हैं।"

...लेकिन यह डर क्यों है इतना? यह चारों तरफ के लोगों का इतना भय क्यों है? चारों तरफ के लोगों की आंखें एक-एक आदमी को भयभीत क्यों किये हैं? हम सब मिलकर एक-एक आदमी को क्यों भयभीत किये हुए हैं। आदमी इतना भयभीत क्यों है? आदमी किस बात की चिन्ता में है?

...आदमी बाहर से फूल सजा लेने की चिन्ता में है। बस लोगों की आंखों में दिखाई पड़ने लगे कि मैं अच्छा आदमी हूं, बात समाप्त हो गयी। लेकिन लोगों की आंखों में अच्छा दिखाई पड़ने से मेरे जीवन का सत्य और मेरे जीवन का संगीत प्रगट नहीं होगा। और न लोगों की आंखों में अच्छा दिखायी पड़ने

से मैं जीवन की मूल-धारा से संबंधित हो सकूंगा। और न लोगों की आंखों में अच्छा दिखायी पड़ने से मेरे जीवन की जड़ों तक मेरी पहुंच हो पायेगी। बल्कि, जितना मैं लोगों की फिक्र करूंगा, उतना ही मैं शाखाओं और पत्तों की फिक्र में पड़ जाऊंगा; क्योंकि लोगों तक सिर्फ पत्ते पहुंचते हैं, जड़ें नहीं। जड़ें तो मेरे भीतर हैं। वे जो रूट्स हैं, वे मेरे भीतर हैं। उनसे लोगों का कोई भी संबंध नहीं है। वहां मैं अकेला हूं। टोटली अलोन। वहां कोई कभी नहीं पहुंचता। वहां सिर्फ मैं हूं। वहां मेरे अतिरिक्त कोई भी नहीं है। वहां मुझे किसी दूसरे की फिक्र नहीं करनी है। अगर जीवन को मैं जानना चाहता हूं; और चाहता हूं कि जीवन मेरा बदल जाये, रूपांतरित हो जाये; और, अगर मैं चाहता हूं कि जीवन का परिपूर्ण सत्य प्रगट हो जाये; चाहता हूं कि जीवन के मंदिर में प्रवेश हो जाये; मैं पहुंच सकूं, उस लोक तक, जहां सत्य का आवास है—तो फिर मुझे लोगों की फिक्र छोड़ देनी पड़ेगी। वह जो क्राउड है, वह जो भीड़ मुझे घेरे हुए है, उसकी फिक्र मुझे छोड़ देनी पड़ेगी। क्योंकि जो आदमी भीड़ की बहुत चिन्ता करता है, वह आदमी कभी जीवन की दिशा में गतिमान नहीं हो पाता। क्योंकि भीड़ की चिन्ता, बाहर की चिन्ता है।

इसका यह मतलब नहीं है कि भीड़ से मैं अपने सारे संबंध तोड़ लूं, जीवन व्यवस्था से अपने सारे संबंध तोड़ लूं। इसका यह मतलब नहीं है। इसका कुल मतलब यह है कि मेरी आंखें भीड़ पर न रह जायें, मेरी आंखें अपने पर हों। इसका कुल मतलब यह है कि दूसरे की आंख में झांककर मैं यह न देखूं कि मेरी तस्वीर क्या है। बल्कि, मैं अपने ही भीतर झांककर देखूं कि मेरी तस्वीर क्या है! अगर मेरी सच्ची तस्वीर का मुझे पता लगाना है, तो मुझे मेरी ही आंखों के भीतर झांकना पड़ेगा।

तो दूसरों की आँखों में मेरा जो अपिरॅयन्स है—मेरी असली तस्वीर नहीं है वहां। और उसी तस्वीर को देखकर मैं खुश हो लूंगा, उसी तस्वीर को देखकर प्रसन्न हो लूंगा। वह तस्वीर गिर जायेगी, तो दुखी हो जाऊंगा। अगर चार आदमी बुरा कहने लगेंगे, तो दुखी हो जाऊंगा। चार आदमी अच्छा कहने लगेंगे, तो सुखी हो जाऊंगा। बस, इतना ही मेरा होना है? तो मैं हवा के झोंको पर जी रहा हूं। हवा पूरब की ओर उड़ने लगेगी, तो मुझे पूरब उड़ना पड़ेगा; हवा पश्चिम की ओर उड़ेगी, तो पश्चिम की ओर उड़ना पड़ेगा।

लेकिन मैं खुद कुछ भी नहीं हूं। मेरा कोई ऑथेन्टिक एग्ज़िस्टेन्स नहीं है। मेरी कोई अपनी आत्मा नहीं है। मैं हवा का एक झोंका हूं। मैं एक सूखा पत्ता हूं कि हवाएं जहां ले जायें, बस, मैं वहीं चला जाऊं; कि पानी की लहरें मुझे जिस ओर बहाने लगें, मैं उस ओर बहने लगूं। दुनिया की आंखें मुझ से जो कहें, वही मेरे लिये सत्य हो जाये। तो फिर मेरा होना क्या है? फिर मेरी आत्मा क्या है? फिर मेरा अस्तित्व क्या है? फिर मेरा जीवन क्या है? फिर मैं एक झूठ हूं। एक बड़े नाटक का हिस्सा हूं। और बड़े मजे की बात यह है कि जिस भीड़ से मैं डर रहा हूं, वह भी मेरे जैसे दूसरों की भीड़ है। बड़ी अजीब बात है कि वे सब भी मुझ से डर रहे हैं, जिनसे कि मैं डर रहा हूं।

हम सब एक-दूसरे से डर रहे हैं। और इस डर में हमने एक तस्वीर बना ली है और भीतर जाने में डरते हैं कि कहीं यह तस्वीर मिट न जाये। एक सप्रेशन, एक दमन चल रहा है। आदमी जो भीतर है, उसे दबा रहा है; और जो नहीं है, उसे थोप रहा है, उसका आरोपण कर रहा है। एक द्वन्द्व, एक कॉनफ्लिक्ट खड़ी हो गयी है। एक-एक आदमी अनेक-अनेक आदमियों में बंट गया है, मल्टी-साइकिक हो गया है। एक-एक आदमी एक-एक आदमी नहीं है। एक ही चौबीस घण्टे में हजार बार बदल जाता है। नया आदमी सामने आता है, तो नयी तस्वीर बन जाती है उसकी आंख में और वह बदल जाता है।

आप जरा ख्याल करना कि अपनी पत्नी के सामने आप दूसरे आदमी होते हैं, अपने बेटे के सामने तीसरे, अपने बाप के सामने चौथे, अपने नौकर के सामने पांचवे, अपने मालिक के सामने छठवे। दिन भर आप अलग-अलग आदमी होते हैं। सामने का आदमी बदला कि आपको बदलना पड़ता है। नौकर के सामने आप शानदार आदमी हो जाते हैं। और मालिक के सामने—वह जो हालत आपके नौकर की आपके सामने होती है, वही—मालिक के सामने आपकी हो जाती है।

आप कुछ हों या नहीं, पर हर दर्पण आपको बनाता है। जो सामने आ जाता है, वही आपको बना देता है। बहुत अजीब बात है। हम हैं? हम हैं ही नहीं। हम एक अभिनय हैं, एक ऐक्टिंग हैं। सुबह से शाम तक अभिनय चल रहा है। सुबह कुछ है, दोपहर कुछ है, शाम कुछ है। हमारे खीसे में पैसे हों, तो हम वही आदमी नहीं रह जाते हैं, बिलकुल दूसरे आदमी हो जाते हैं। जब पैसे नहीं होते हैं खीसे में, तब बिलकुल दूसरे आदमी हो जाते हैं। किसी

मिनिस्टर को देखें, जब वह पद पर हो—और फिर जब वह मिनिस्टर न रह जाये, तब उसको देखें। जैसे कि कपड़े की क्रीज निकल गयी हो, ऐसा वह हो जाता है। सब खत्म। आदमी गया। आदमी था ही नहीं जैसे।

मैंने सुना है, जापान के एक गांव में एक सुंदर युवा फकीर रहता था। सारा गांव उसे श्रद्धा और आदर देता था। लेकिन एक दिन सारी बात बदल गयी। गांव में अफवाह उड़ी कि उस फकीर से किसी लड़की को एक बच्चा पैदा हो गया है। उस स्त्री ने अपने बाप को कह दिया है कि यह उसी फकीर का बच्चा है, जो गांव के बाहर रहता है। वही फकीर इसका बाप है। सारा गांव टूट पड़ा उस फकीर पर। जाकर उसकी झोपड़े में आग लगा दी। सुबह सर्दी के दिन थे, वह बाहर बैठा था। उसने पूछा कि "मित्रो, यह क्या कर रहे हो? क्या बात है?" तो उन्होंने उस नवजात बच्चे को उसकी गोद में पटक दिया और कहा—हमसे पूछते हो, क्या बात है? यह बच्चा तुम्हारा है।" उस फकीर ने कहा—"इज इट सो? क्या ऐसी बात है? अगर तुम कहते हो, ठीक ही कहते होओगे। क्योंकि भीड़ तो कुछ गलत कहती ही नहीं, भीड़ तो हमेशा सत्य ही कहती है। अब तुम कहते हो, तो ठीक ही कहते होओगे।" वह बच्चा रोने लगा, तो वह फकीर उसे थपथपाने लगा।

गांव भर के लोग गालियां देकर वापस लौट आये और उस बच्चे को उसके पास छोड़ आये। फिर दोपहर को जब फकीर भीख मांगने निकला, तो उस बच्चे को लेकर भीख मांगने निकला गांव में। कौन उसे भीख देगा?—आप भीख देते?—कोई उसे भीख नहीं देगा। जिस दरवाजे पर वह गया, दरवाजे बंद हो गये। उस रोते हुए छोटे बच्चे को लेकर उस फकीर का उस गांव से गुजरना...। बड़ी अजीब-सी हालत हो गयी उसकी। लोगों की भीड़ उसके पीछे चलने लगी उसे गालियां देती हुई। फिर वह उस दरवाजे के सामने पहुंचा, जिसकी बेटी को यह बच्चा हुआ था। और उसने उस दरवाजे के सामने आवाज लगायी कि कसूर मेरा होगा इसका बाप होने में, लेकिन इसका मेरा बेटा होने में क्या कसूर हो सकता है। बाप होने में मेरी गलती होगी, लेकिन बेटा होने में इसकी तो कोई गलती नहीं हो सकती। कम-से-कम इसे तो दूध मिल जाये। उस बच्चे को जन्म देनेवाली लड़की द्वार पर ही खड़ी थी। उसके प्राण कंप गये, फकीर को भीड़ में घिरा हुआ, पत्थर खाते हुए देखकर: छिपाना मुश्किल हो गया। उसने अपने बाप के पैर पकड़ लिये, कहा—

"क्षमा करें, इस फकीर को तो मैं पहचानती भी नहीं। सिर्फ इसके असली बाप को बचाने के लिए मैंने इस फकीर का झूठा नाम ले लिया था!"

बाप आकर फकीर के पैरों पर गिर पड़ा और बच्चे को फकीर से छीन लिया। और फकीर से क्षमा मांगने लगा। फकीर ने पूछा, "लेकिन बात क्या है? बच्चे को क्यों छीन लिया तुमने? उसके बाप ने कहा—लड़की के बाप ने, "आप कैसे नासमझ हैं। आपने सुबह ही क्यों न बताया कि यह बच्चा आपका नहीं है?" उस फकीर ने कहा—"इज इट सो—क्या ऐसा है? बेटा मेरा नहीं है? तुम्हीं तो सुबह कहते थे कि तुम्हारा है। और भीड़ तो कभी झूठ बोलती नहीं है। अगर तुम बोलते हो नहीं है मेरा, तो नहीं होगा।"

लोग कहने लगे कि "तुम कैसे पागल हो! तुमने सुबह कहा क्यों नहीं कि बच्चा तुम्हारा नहीं है। तुम इतनी निंदा और अपमान झेलने को राजी क्यों हुए?" उस फकीर ने कहा—"मैंने तुम्हारी कभी चिंता नहीं की: कि तुम क्या सोचते हो। तुम आदर देते हो कि अनादर। तुम श्रद्धा देते हो कि निंदा। मैंने तुम्हारी आंखों की तरफ देखना बंद कर दिया है। मैं अपनी तरफ देखूं कि तुम्हारी आंखों की तरफ देखूं। जब तक मैं तुम्हारी आंखों में देखता रहा, तबतक अपने को मैं नहीं देख पाया। और तुम्हारी आंख तो प्रतिपल बदल रही है। और हर आदमी की आंख अलग है। हजार-हजार दर्पण हैं, मैं किस-किस में देखूं। अब मैंने अपने में ही झांकना शुरू कर दिया है। अब मुझे फिक्र नहीं है कि तुम क्या कहते हो? अगर तुम कहते हो कि बच्चा मेरा है, तो ठीक ही कहते हो। मेरा ही होगा। आखिर किसी का तो होगा ही? मेरा ही सही। तुम कहते हो कि मेरा नहीं है, तो तुम्हारी मर्जी। नहीं होगा। लेकिन मैंने तुम्हारी आंखों में देखना बंद कर दिया है।"

...और वह फकीर कहने लगा कि मैं तुमसे भी कहता हूं कि कब वह दिन आयेगा कि तुम दूसरों की आँखों में देखना बंद करोगे, और अपनी तरफ देखना शुरू करोगे...?

यह दूसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं जीवन क्रांति का—कि मत देखो दूसरों की आँखों में कि आप क्या हैं। वहां जो भी तस्वीर बन गयी है, वह आपके वस्त्रों की तस्वीर है, वह आपकी दिखावट है, वह आपका नाटक है, वह आपकी एक्टिंग है—वह आप नहीं हैं; क्योंकि आप कभी प्रगट ही न हो सके, जो आप हैं; तो उसकी तस्वीर कैसे बनेगी! वहां तो आपने जो दिखाना चाहा

है, वह दिख रहा है।

भीड़ से बचना धार्मिक आदमी का पहला कर्तव्य है, लेकिन भीड़ से बचने का मतलब यह नहीं है कि आप जंगल में भाग जायें। भीड़ से बचने का मतलब क्या है? समाज से मुक्त होना धार्मिक आदमी का पहला लक्षण है, लेकिन समाज से मुक्त होने का क्या मतलब है? समाज से मुक्त होने का मतलब यह नहीं है कि आदमी भाग जाये जंगल में। वह समाज से मुक्त होना नहीं है। वह समाज की ही धारणा है संन्यासी के लिये कि जो आदमी समाज छोड़कर भाग जाता है, वह उसको ही आदर देता है। यह समाज से भागना नहीं है। यह तो समाज की ही धारणा को मानना है। यह तो समाज के ही दर्पण में अपना चेहरा देखना है। गेरुए वस्त्र पहन कर खड़े हो जाना संन्यासी हो जाना नहीं है। वह तो समाज की आंखों में, समाज के दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखना है। क्योंकि अगर समाज गेरुए वस्त्र को आदर देना बंद कर दे, तो मैं गेरुआ वस्त्र नहीं पहनूंगा। अगर समाज आदर देता है एक आदमी को—पत्नी और बच्चों को छोड़कर भाग जाने को—तो आदमी भाग जाता है। यहां भी वह समाज की आंखों में देख रहा है।

...नहीं, यह समाज को छोड़ना नहीं है। समाज को छोड़ने का अर्थ है—समाज की आंखों में अपने प्रतिबिंब को देखना बंद कर दें। अगर जीवन में कोई भी क्रांति चाहिए, तो लोगों की आंखों में देखना बंद कर दें। भीड़ के दर्पण में देखना बंद कर दें। धोखे के क्षण में वहां वस्त्र दिखायी पड़ते हैं। लेकिन दुनिया में वस्त्रों की ही कीमत है। और अगर बाहर की यात्रा करनी है, तो फिर मेरी बात कभी मत मानना। नहीं तो बाहर की यात्रा बहुत मुश्किल हो जायेगी। इस दुनिया में वस्त्रों की ही कीमत है, आत्माओं की कीमत नहीं है।

मैंने सुना है कवि गालिब को एक दफा बहादुरशाह ने भोजन का निमंत्रण दिया था। गालिब था गरीब आदमी। और अब तक ऐसी दुनिया नहीं बन सकी है कि कवि के पास भी खाने-पीने को पैसा हो सके। अब तक ऐसा नहीं हो सकता है। अच्छे आदमी को रोजी जुटानी अभी भी बहुत मुश्किल है। गालिब तो गरीब आदमी था। कविताएं लिखी थीं ऊंची लेकिन ऊंची कविताएं लिखने से क्या होता है? कपड़े उसके फटे-पुराने थे। मित्रों ने कहा, बादशाह के यहाँ जा रहे हो तो इन कपड़ों से नहीं चलेगा। क्योंकि बादशाहों के महल में तो कपड़े पहचाने

जाते हैं। गरीब के घर में तो बिना कपड़ों के भी चल जाये, लेकिन बादशाहों के महल में तो कपड़े ही पहचाने जाते हैं। मित्रों ने कहा, हम उधार कपड़ें ला देते हैं, तुम उन्हें पहनकर चले जाओ। जरा आदमी तो मालूम पड़ोगे।

गालिब ने कहा—"उधार कपड़े! यह तो बड़ी बुरी बात होगी कि मैं किसी और के कपड़े पहनकर जाऊं। मैं जैसा हूं, हूं। किसी और के कपड़े पहनने से क्या फर्क पड़ जायेगा? मैं तो वही रहूंगा।" मित्रों ने कहा—"छोड़ो भी यह फिलॉसफी की बातें। इन सब बातों से वहाँ नहीं चलेगा। हो सकता है, पहरेदार वापस लौटा दे! इन कपड़ो में तो भिखमंगों जैसा मालूम पड़ते हो।" गालिब ने कहा, "मैं तो जैसा हूं, हूं। गालिब को बुलाया है, कपड़ों को तो नहीं बुलाया? तो गालिब जायेगा।"

...नासमझ था—कहना चाहिए, नादान। नहीं माना गालिब, और चला गया। दरवाजे पर द्वारपाल ने बंदूक आड़ी कर दी। पूछा कि, "कहां भीतर जा रहे हो?" गालिब ने कहा—"मैं महाकवि गालिब हूं। सुना है नाम कभी? सम्राट ने बुलाया है—सम्राट का मित्र हूं, भोजन पर बुलाया है।" द्वारपालने कहा—"हटो रास्ते से। दिन भर में जो भी आता है, अपने को सम्राट का मित्र बताता है! हटो रास्ते से, नहीं तो उठाकर बंद करवा दूंगा" गालिब ने कहा—"क्या कहते हो, मुझे पहचानते नहीं?" द्वारपालने कहा—"तुम्हारे कपड़े बता रहे हैं कि तुम कौन हो! फटे जूते बता रहे हैं कि तुम कौन हो! शकल देखी है कभी आईने में कि तू कौन है?"

गालिब दुखी होकर वापस लौट आया। मित्रों से उसने कहा—"तुम ठीक ही कहते थे, वहां कपड़े पहचाने जाते हैं। ले आओ उधार कपड़े।" मित्रों ने कपड़े लाकर दिये। उधार कपड़े पहनकर गालिब फिर पहुंच गया। वही द्वारपाल झुक-झुक कर नमस्कार करने लगा। गालिब बहुत हैरान हुआ कि 'कैसी दुनिया है?' भीतर गया तो बादशाह ने कहा, बड़ी देर से प्रतीक्षा कर रहा हूं।

गालिब हंसने लगा, कुछ बोला नहीं। जब भोजन लगा दिया गया तो सम्राट खुद भोजन के लिए सामने बैठा—भोजन कराने के लिए। गालिब ने भोजन का कौर बनाया और अपने कोट को खिलाने लगा कि, 'ऐ कोट खा!' पगड़ी को खिलाने लगा कि 'ले पगड़ी खा!' सम्राट ने कहा, "आपके भोजन करने की बड़ी अजीब तरकीबें मालूम पड़ती हैं। यह कौन-सी आदत है? यह

आप क्या कर रहे हैं? गालिब ने कहा, "जब मैं आया था तो द्वार से ही लौटा दिया गया था। अब कपड़े आये हैं उधार। तो जो आये हैं, उन्हीं को भोजन भी करना चाहिये!"

बाहर की दुनिया में कपड़े चलते हैं।...बाहर की दुनिया में कपड़े ही चलते हैं। वहां आत्माओं का चलना बहुत मुश्किल है; क्योंकि बाहर जो भीड़ इकट्ठी है, वह कपड़े वालों की भीड़ है। वहां आत्मा को चलाने की बात तपश्चर्या हो जाती है। लेकिन बाहर की दुनिया में जीवन नहीं मिलता। वहां हाथ में कपड़ों की लाश रह जाती है, अकेली। वहां जिंदगी नहीं मिलती है। वहां आखीर में जिंदगी की कुल सम्पदा राख होती है—जली हुई। मरते वक्त अखबार की कटिंग रख लेनी है साथ में, तो बात अलग है। अखबार में क्या-क्या छपा था, उसको साथ रख ले कोई, तो बात अलग है।

जीवन की ओर वही मुड़ सकते हैं, जो दूसरों की आंखों में देखने की कमजोरी छोड़ देते हैं और अपनी आंखों के भीतर झांकने का साहस जुटाते हैं। इसलिए दूसरा सूत्र है, 'भीड़ से सावधान।' बीअरवेयर ऑफ द क्राउड। चारों ओर से आदमी की भीड़ घेरे हुये है। और जिंदा लोगों की भीड़ ही नहीं घेरे हुए है, मुर्दा लोगों की भीड़ भी घेरे हुए है। करोड़ों-करोड़ों वर्षों से जो भीड़ इकट्ठी होती चली गयी है दुनिया में, उसका दबाव है चारों तरफ और एक-एक आदमी की छाती पर वह सवार है, और एक-एक आदमी उसकी आंखों में देखकर अपने को बना रहा है, सजा रहा है। वह भीड़ जैसा कहती है, वैसा होता चला जाता है। इसलिए आदमी को अपनी आंख का कभी ख्याल ही पैदा नहीं हो पाता। उसके जीवन के बीज में कभी अंकुर ही नहीं आ पाता। क्योंकि वह कभी वह अपने बीज की तरफ ध्यान ही नहीं देता। बीज की तरफ उसकी आंख ही नहीं उठ पाती। उसके प्राणों की धारा कभी प्रवाहित ही नहीं होती बीज की तरफ।

जिन्हें भी भीतर की तरफ जाना है, उन्हें पहले बाहर की चिंता छोड़ देनी पड़ती है। कौन क्या कहता है, कौन क्या सोचता है—इसकी चिंता छोड़ देनी पड़ती है। नहीं, सवाल यह नहीं है कि कौन क्या सोचता है। सवाल यह है कि 'मैं क्या हूं? और मैं क्या जानता हूं?' अगर जीवन में क्रांति लानी है तो सवाल यह है कि 'मैं क्या हूं?' मैं क्या पहचानता हूं अपने को?'

और स्मरण रहे, जो आदमी अपने भीतर पहचानना शुरू करता है, उसके

भीतर बदलाहट उसी क्षण शुरू हो जाती है। क्योंकि भीतर जो गलत है, उसे पहचानकर बर्दाश्त करना मुश्किल है, असंभव है। अगर पैर में कांटा गड़ा है, तो वह तभी तक गड़ा रह सकता है, जब तक उसका मुझे पता नहीं है। जैसे ही मुझे पता चलता है, पैर से कांटे को निकालना मजबूरी हो जाती है।

एक बच्चा स्कूल के मैदान में खेल रहा है—हाकी खेल रहा है। पैर में चोट लग गयी है, खून बह रहा है। उसे पता भी नहीं चला, क्योंकि वह हाकी खेलने में संलग्न है, आक्युपाइड है। उसकी सारी अटेंशन, उसका सारा ध्यान हाकी खेलने में लगा है: वह जो गोल करना है, उस पर अटका हुआ है; वह जो चारों तरफ खिलाड़ी हैं, उनसे अटका हुआ है; वह जो प्रतियोगिता चल रही है, उसमें उलझा हुआ है। उसे पता भी नहीं है कि उसके पैर से खून बह रहा है। वह दौड़ रहा है, दौड़ रहा है। फिर खेल बंद हो गया है और अचानक उसे ख्याल आया है कि पैर से खून बह रहा है। यह खून बहुत देर से बह रहा है, लेकिन अब तक उसे पता नहीं चला। अब वह मलहम-पट्टी की चिंता में पड़ गया है। लेकिन इतनी देर तक उसे पता नहीं चला। क्योंकि जब तक वह खेल में व्यस्त था, तब तक पता चलने का सवाल ही नहीं था।

हम बाहर देख रहे हैं। गोल करना है, वह देख रहे हैं। प्रतियोगिता चल रही है, वह देख रहे हैं। लोगों की आंखों में देख रहे हैं। हमें पता ही नहीं चलता कि भीतर कितने कांटे हैं और कितने घाव हैं। भीतर पता नहीं चलता, कितना अंधकार है! भीतर पता नहीं चलता, कितनी बीमारियां हैं! उलझे रहेंगे और उलझे रहेंगे। जिंदगी बीत जायेगी और पता नहीं चलेगा। एक बार हटाये आंख बाहर से और भीतर के घावों को देखें! और मैं आपसे कहता हूं, उन्हें देखना उनके बदलने का पहला सूत्र है। एक बार दिखायी पड़ा कि फिर आप उन्हें बर्दाश्त नहीं कर सकते। फिर आपको बदलना ही पड़ेगा। और बदलना कठिन नहीं है। जो दुख दे रहा है, उसे बदलना कभी भी कठिन नहीं होता, सिर्फ भुलाये रखना आसान होता है। बदलना कठिन नहीं है, लेकिन भुलाये रखना बहुत आसान है। और जब तक भूला रहेगा, तब तक जीवन मे कोई क्रांति नहीं होगी।

जीवन क्रांति का दूसरा सूत्र है, 'मैं दूसरों की आंखों में न देखूं।' अपनी आंख में, अपने भीतर, अपनी तरफ, मैं जहां हूं—वहां देखूं यही असली सवाल है, यही असली समस्या है व्यक्ति के सामने कि 'मैं क्या हूं?' जैसा भी मैं हूं,

उसको ही देखना और साक्षात्कार करना है। लेकिन हम? कोई हमसे पूछेगा—आप कौन हैं? तो हम कहेंगे—'फलां आदमी का बेटा हूं, फलां मोहल्ले में रहता हूं, फलां गांव में रहता हूं'—यही परिचय है हमारा। यह लेबल जो हम ऊपर से चिपकाये हुए हैं, यही हमारी पहचान है, यही हमारी जिंदगी का सबूत है—हमारी जिंदगी का प्रमाण है। यही हमारी जानकारी है अपने बाबत। हमें पता ही नहीं है कि भीतर हम कौन हैं। अभीतक हम बाहर से कागज चिपकाये हुये हैं। और वे भी दूसरों के चिपकाये हुए हैं। किसी ने एक नाम चिपका दिया है। उसी नाम को जिंदगी भर लिये हम घूम रहे हैं। उस नाम को कोई गाली दे दे, तो लड़ने को तैयार हो जाते हैं।

स्वामी राम अमेरिका गये थे। वहां के लोग बड़ी मुश्किल में पड़ गए। एक बार राम को कुछ लोगों ने गालियां दीं, तो राम ने मित्रों को आकर कहा कि आज बड़ा मजा हो गया। बाजार में कुछ लोग मिल गये और राम को खूब गालियां देने लगे। हम भी खड़े सुनते रहे। लोगों ने कहा—क्या आप पागल हो गये हैं। लोग राम को गालियां देते थे? कौन राम? स्वामी राम ने कहा—यह राम, जिसको लोग राम कहते हैं। कुछ लोगों ने इस राम को घेर लिया और बेटे को बहुत गालियां देने लगे। हम खड़े होकर देखते रहे कि आज राम को अच्छी गालियां पड़ रही हैं।

लेकिन हम राम होकर झगड़े में पड़े हैं। पर हम राम नहीं हैं। हम तो जो हैं, उसका नाम तो राम नहीं है। यह नाम तो किसी का दिया हुआ है। यह तो समाज का दिया हुआ है। हम तो कुछ और हैं। जब नाम नहीं था, तब भी हम थे। जब नाम नहीं रह जायेगा, तब भी हम होंगे। अभी भी रात सो जाते हैं, तो नाम मिट जाता है—समाज भी मिट जाता है, फिर भी हम सोते हैं।

आप मिट जाते हैं रात: न पत्नी रह जाती है आपकी, न बेटा रह जाता है आपका—न धन-दौलत रह जाती है—न पद प्रतिष्ठा रह जाती है: फिर भी आप रह जाते हैं, जब कि सब मिट जाता है। वह जो सोसायटी देती है, वह बाहर ही छूट जाता है, वह भीतर जाता ही नहीं। वह मरने के वक्त भी भीतर नहीं जाता—और ध्यान के वक्त भी भीतर नहीं जाता। वह जो समाप्त होता है, वह बाहर है, और बाहर ही रह जाता है। लेकिन उसको हम अपना व्यक्तित्व समझे हुए हैं। इस भूल से मुक्त हो जाना चाहिए। अन्यथा कोई

व्यक्ति जीवन की यात्रा पर एक कदम आगे नहीं बढ़ सकता है।

सुबह मैंने एक सूत्र कहा है कि 'सिद्धान्तों से मुक्त हो जाये', क्योंकि जो सिद्धान्तों से बंधा है, वह जीवन क्रांति के रास्ते पर नहीं जा पायेगा। दूसरा सूत्र कहता हूं, 'भीड़ से मुक्त हो जाना है', क्योंकि जो भीड़ का गुलाम है, वह कभी भी जीवन क्रांति के रास्ते से नहीं गुजर सकता। आने वाले दिनों में कुछ और सूत्र भी कहूंगा, लेकिन उन सूत्रों को सुनने भर से कुछ होने वाला नहीं है। थोड़ा-सा भी प्रयोग करेंगे, तो द्वार खुलेगा; कुछ दिखायी पड़ना शुरू होगा।

धर्म एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। धर्म एक जीवित विज्ञान है। जो प्रयोग करता है, वह रूपांतरित हो जाता है और उपलब्ध होता है वह सब, जिसे पाये बिना हम व्यर्थ जीते हैं और व्यर्थ मर जाते हैं; और जिसे पा लेने पर जीवन एक धन्यता हो जाती है; और जिसे पा लेने पर जीवन कृतार्थ हो जाता है; और जिसे पा लेने पर सारा जगत् परमात्मा में रूपांतरित हो जाता है। लेकिन जिस दिन भीतर दिखायी पड़ता है कि भीतर परमात्मा है, उसी दिन यह भ्रम भी मिट जाता है कि बाहर कोई और है। बस, फिर तो सिर्फ 'वही' रह जाता है। जो भीतर दिखायी पड़ता है, वही बाहर भी प्रमाणित हो जाता है। और जगत् के मूल सत्य को जान लेना, जीवन को अनुभव कर लेना है। और जीवन को अनुभव कर लेना, मृत्यु के ऊपर उठ जाना है। फिर कोई मृत्यु नहीं है। जीवन की कोई मृत्यु नहीं है। जो मरता है, वह समाज के द्वारा दिया गया झूठा व्यक्तित्व है। जो मरता है, वह प्रकृति के द्वारा दिया गया झूठा शरीर है। जो नहीं मरता है, वह जीवन है। लेकिन उसका हमें कोई पता नहीं है।

पहले समाज से हटें--समाज के झूठे व्यक्तित्व से हटें, फिर प्रकृति के दिये गये व्यक्तित्व से हटें। उसकी कल मैं बात करूंगा कि प्रकृति के दिये गये शरीर से कैसे हटें; और फिर हम वहां पहुंच सकते हैं, जहां जीवन है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुग्रहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तीसरा प्रवचन

बड़ौदा, १४ फरवरी, १९६९

दमन से मुक्ति

मेरे प्रिय आत्मन,

'जीवन क्रांति के सूत्र'—इस परिचर्चा के तीसरे सूत्र पर आज चर्चा करनी है। पहला सूत्र था: सिद्धान्त, शास्त्र और वाद से मुक्ति। दूसरा सूत्र था: भीड़ से, समाज से, दूसरों से मुक्ति। और आज तीसरे सूत्र पर चर्चा करनी है। इस तीसरे सूत्र को समझने के लिए मन का एक अद्‌भुत राज समझ लेना आवश्यक है। मन की वह बड़ी अद्‌भुत प्रक्रिया है, जो साधारणतः पहचान में नहीं आती। और वह प्रक्रिया यह है कि मन को जिस ओर से बचाने की कोशिश की जाये, मन उसी ओर जाना शुरू हो जाता है; जहां से मन को हटाया जाये, मन वहीं पहुंच जाता है; जिस तरफ से पीठ की जाये, मन उसी ओर उपस्थित हो जाता है। 'निषेध' मन के लिए निमंत्रण है, 'विरोध' मन के लिए बुलावा है; और मनुष्य जाति इस मन को बिना समझे आज तक जीने की कोशिश करती रही है।

फ्रायड ने अपनी जीवन कथा में एक छोटा-सा उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि एक बार वह बगीचे में अपनी पत्नी और छोटे बच्चे के साथ घूमने गया। देर तक वह पत्नी से बातचीत करता रहा, टहलता रहा। फिर जब सांझ होने लगी और बगीचे के द्वार बन्द होने का समय करीब हुआ, तो फ्रायड की पत्नी को ख्याल आया कि 'उसका बेटा न-मालूम कहां छूट गया है? इतने बड़े बगीचे में वह पता नहीं कहां होगा? द्वार बन्द होने के करीब हैं, उसे कहां खोजूं?'

फ्रायड की पत्नी चिन्तित हो गयी, घबड़ा गयी। फ्रायड ने कहा—"घबड़ाओ

मत ! एक प्रश्न मैं पूछता हूँ, तुमने उसे कहीं जाने से मना तो नहीं किया ? अगर मना किया है तो सौ में निन्यानबे मौके तुम्हारे बेटे के उसी जगह होने के हैं, जहां जाने से तुमने उसे मना किया है।" उसकी पत्नी ने कहा--"मना तो किया था कि फव्वारे पर मत पहुंच जाना"। फ्रायड ने कहा--"अगर तुम्हारे बेटे में थोड़ी भी बुद्धि है, तो वह फव्वारे पर ही मिलेगा। वह वहीं होगा। क्योंकि कई बेटे ऐसे भी होते हैं, जिनमें बुद्धि नहीं होती। उनका हिसाब रखना फिजूल है।"

फ्रायड की पत्नी बहुत हैरान हो गयी। वे गये दोनों भागे हुए फव्वारे की ओर। उनका बेटा फव्वारे पर पानी में पैर लटकाये, बैठा पानी से खिलवाड़ कर रहा था। फ्रायड की पत्नी ने कहा--"बड़ा आश्चर्य ! तुमने कैसे पता लगा लिया कि हमारा बेटा यहां होगा ?" फ्रायड ने कहा--"आश्चर्य इसमें कुछ भी नहीं है। मन को जहां जाने से रोका जाये, मन वहीं जाने के लिए आकर्षित होता है; जहां के लिये कहा जाये कि मत जाना वहां, एक छिपा हुआ रहस्य शुरू हो जाता है कि मन वहीं जाने को तत्पर हो जाता है।"

फ्रायड ने कहा--यह तो आश्चर्य नहीं है कि मैंने तुम्हारे बेटे का पता लगा लिया, आश्चर्य यह है कि मनुष्य जाति इस छोटे से सूत्र का पता अब तक नहीं लगा पायी। और इस छोटे-से सूत्र को बिना जाने जीवन का कोई रहस्य कभी उद्घटित नहीं हो पाता। इस छोटे-से सूत्र का पता न होने के कारण मनुष्य जाति ने अपना सारा धर्म, सारी नीति, सारे समाज की व्यवस्था सप्रेशन पर, दमन पर खड़ी की हुई है। मनुष्य का जो व्यक्तित्व हमने खड़ा किया है वह दमन पर खड़ा है, दमन उसकी नींव है। और दमन पर खड़ा हुआ आदमी लाख उपाय करे, जीवन की ऊर्जा का साक्षात्कार उसे कभी नहीं हो सकता है। क्योंकि जिस-जिस का उसने दमन किया है, मन में वह उसी से उलझा-उलझा नष्ट हो जाता है। थोड़ा-सा प्रयोग करें और पता चल जायेगा। किसी बात से मन को हटाने की कोशिश करें और पायेंगे मन उसी बात के आस-पास घूमने लगा है। किसी बात को भूलने की कोशिश करें, तो भूलने की वही कोशिश उस बात को स्मरण करने का आधार बन जाती है। किसी बात को, किसी विचार को, किसी स्मृति को, किसी इमेज को, किसी प्रतिमा को मन से निकालने की कोशिश करें, और मन उसी को पकड़ लेता है। भीतर, मन में लड़ें और आप पायेंगे कि जिससे आप लड़ेंगे, उसी से हार खायेंगे; जिससे

भागेंगे, वही पीछा करेगा। जैसे छाया पीछा कर रही है। जितनी तेजी से भागते हैं, छाया उतनी ही तेजी से पीछा करती है।

मन को हमने जहां-जहां से भगाया है, मन वहीं-वहीं हमें ले गया है; जहां-जहां जाने से हमने उसे इन्कार किया है, जहां-जहां जाने से हमने द्वार बन्द किये हैं, मन वहीं-वहीं हमें ले गया है।

क्रोध से लड़ें--और मन क्रोध के पास ही खड़ा हो जायेगा; हिंसा से लड़ें --और मन हिंसक हो जायेगा; मोह से लड़ें--और मन मोह ग्रस्त हो जायेगा; लोभ से लड़ें--और मन लोभ में गिर जायेगा; धन से लड़ें--और मन धन के प्रति ही पागल हो उठेगा; काम से लड़ने वाला मन, सेक्स से लड़ने वाला मन सेक्स में चला जायेगा। जिससे लड़ेंगे, मन वही हो जायेगा; यह बड़ी अद्भुत बात है। जिसको दुश्मन बनायेंगे, मन पर उस दुश्मन की ही प्रतिच्छवि अंकित हो जायेगी।

मित्रों को मन भूल जाता है, शत्रुओं को मन कभी नहीं भूल पाता। लेकिन यह तथ्य है कि जिससे हम लड़ें, मन उसके साथ ढल जाये, लेकिन उसकी शक्ल बदल ले, नाम बदल ले।

मैंने सुना है, एक गांव में एक बहुत क्रोधी आदमी रहता था। वह इतना क्रोधी था कि एक बार उसने अपनी पत्नी को धक्का देकर कुएं में गिरा दिया था। जब उसकी पत्नी मर गयी और उसकी लाश कुएं से निकाली गयी तो वह क्रोधी आदमी जैसे नींद से जाग गया। उसे लगा कि उसने जिन्दगी में सिवाय क्रोध के और कुछ भी नहीं किया। इस दुर्घटना से वह एकदम सचेत हो गया। उसे बहुत पश्चाताप हुआ। उस गांव में एक मुनि आये हुये थे। वह उनके दर्शन को गया और उनके चरणों में सिर रखकर बहुत रोया, और उसने कहा-- "मैं इस क्रोध से कैसे छुटकारा पाऊं ? क्या रास्ता है ? मैं कैसे इस क्रोध से बचूं ?" मुनि ने कहा--"तुम संन्यासी हो जाओ। छोड़ दो वह क्रोध, जिसे कल तक पकड़े थे...।"

लेकिन, मजा यह है कि जिसे छोड़ो, वह और भी मजबूती से पकड़ लेता है। लेकिन यह थोड़ी गहरी बात है, एकदम से समझ में नहीं आती...।

"क्रोध को छोड़ दो; संन्यासी हो जाओ; शान्त हो जाओ ! अब तो इस क्रोध को छोड़ो !"

वह आदमी संन्यासी हो गया। उसने अपने वस्त्र फेंक दिये और नग्न हो गया, और उसने कहा—"मुझे दीक्षा दें, मैं शिष्य हुआ।"

मुनि बहुत हैरान हुए। बहुत लोग उन्होंने देखे थे, पर ऐसा संकल्पवान आदमी नहीं देखा था, जो इतनी शीघ्रता से संन्यासी हो जाये। उन्होंने कहा, "तू तो अद्भुत है। तेरा संकल्प महान है। तू इतनी तीव्रता से संन्यासी होने को तैयार हो गया है, सब छोड़कर?"

लेकिन, उन्हें भी पता नहीं कि यह भी क्रोध का ही दूसरा रूप है। वह आदमी, जो कि अपनी पत्नी को क्रोध में आकर एक क्षण में कुएं में धक्का दे सकता है, वह क्रोध में आकर एक क्षण में नंगा भी खड़ा हो सकता है; संन्यासी भी हो सकता है। इन दोनों बातों में विरोध नहीं है। यह एक ही क्रोध के दो रूप हैं।

तो वे मुनि बहुत प्रभावित हुए उससे। उन्होंने उसे दीक्षा दे दी और उसका नाम रख दिया—मुनि शान्तिनाथ। अब वह मुनि शान्तिनाथ हो गया। और भी शिष्य थे मुनि के, लेकिन उस शांतिनाथ का मुकाबला करना बहुत मुश्किल था, क्योंकि उतने क्रोध में उनमें से कोई भी नहीं था। दूसरे शिष्य दिन में अगर एक बार भोजन करते, तो शान्तिनाथ दो दिन तक भोजन ही नहीं करते थे...।

क्रोधी आदमी कुछ भी कर सकता है!

...दूसरे अगर सीधे रास्ते से चलते, तो मुनि शांतिनाथ उलटे रास्ते, कांटों से भरे रास्ते पर चलते! दूसरे शिष्य अगर छाया में बैठते, तो मुनि शांतिनाथ धूप में ही खड़े रहते! थोड़े ही दिनों में मुनि शान्तिनाथ का शरीर सूख गया, कृश हो गया, काला पड़ गया, पैर में घाव पड़ गये; लेकिन उनकी कीर्ति फैलनी शुरू हो गयी चारों ओर, कि मुनि शान्तिनाथ महान तपस्वी हैं...।

वह सब क्रोध ही था, जो स्वयं पर लौट आया था। वह क्रोध, जो दूसरों पर प्रगट होता रहा था, अब वह अपने पर ही प्रगट हो रहा था।

सौ में से निन्यानबे तपस्वी स्वयं पर लौटे हुए क्रोध का परिणाम होते हैं। दूसरों को सताने की चेष्टा रूपांतरित होकर खुद को सताने की चेष्टा भी बन सकती है। दूसरों को भी सताया जा सकता है और खुद को भी सताया जा सकता है। सताने में अगर रस हो, तो स्वयं को भी सताया जा सकता है।

...अब उसने दूसरों को सताना बन्द कर दिया था, अब वह अपने को ही सता रहा था। और पहली बार एक नयी घटना घटी थी: कि दूसरों को सताने पर लोग उसका अपमान करते थे और अब खुद को सताने से लोग उसका सम्मान करने लगे थे। अब लोग उसे महातपस्वी कहने लगे थे। मुनि की कीर्ति सब और फैलती गयी। जितनी उसकी कीर्ति फैलती गयी, वह अपने को उतना ही सताने लगा, अपने साथ दुष्टता करने लगा। जितनी उसने स्वयं से दुष्टता की, उतना ही उसका सम्मान बढ़ता चला गया। दो-चार वर्षों में गुरू से ज्यादा उसकी प्रतिष्ठा हो गयी। फिर वह देश की राजधानी में आया...।

मुनियों को राजधानी में जाना बहुत जरूरी होता है। अगर आप मुनियों को देखना चाहते हों, तो हिमालय पर जाने की कोई जरूरत नहीं है, देश की राजधानी में चले जाइए और वहां सब मुनि और सब संन्यासी अड्डा जमाये हुए मिल जायेंगे।

...वे मुनि भी राजधानी की तरफ चले। राजधानी में पुराना एक मित्र रहता था। उसे खबर मिली तो वह बहुत हैरान हुआ कि जो आदमी इतना क्रोधी था, वह शान्तिनाथ हो गया! बड़ा समझदार है, जाऊं दर्शन कर जाऊं।

वह मित्र दर्शन करने आया। मुनि अपने तख्त पर सवार थे। उन्होंने मित्र को देख लिया, मित्र को पहचान भी गये—लेकिन जो लोग तख्त पर सवार हो जाते हैं, वे कभी किसी को आसानी से नहीं पहचानते; क्योंकि पुराने दिनों के साथी को पहचानना ठीक भी नहीं होता। क्योंकि वह भी कभी वैसे ही रहे हैं, इसका पता चल जाता है।

देख लिया, पहचाना नहीं। मित्र भी समझ गया कि पहचान तो लिया है, लेकिन फिर भी पहचानने में गड़बड़ है। आदमी ऊपर चढ़ता ही इसलिए है कि जो पीछे छूट जाये, उनको पहचाने न। और जब बहुत से लोग उसको पहचानने लगते हैं, तो वह सबको पहचानना बन्द कर देता है। पद के शिखर पर चढ़ने का रस ही यही है कि उसे सब पहचाने, लेकिन वह किसी को नहीं पहचाने।

....मित्र पास सरक आया और उसने पूछा कि "मुनि जी, क्या मैं पूछ सकता हूं—आपका नाम क्या है?" मुनि जी को क्रोध आ गया।

"क्या अखबार नहीं पढ़ते हो, रेडियो नहीं सुनते हो, मेरा नाम पूछते हो?

मेरा नाम जग-जाहिर है, मेरा नाम मुनि शान्तिनाथ है ।"

उनके बताने के ढ़ंग से मित्र समझ गया, कि कोई बदलाहट नहीं हुई है। आदमी तो वही-का-वही है, सिर्फ नंगा खड़ा हो गया है ।

दो मिनट दूसरी बात चलती रही । मित्र ने फिर पूछा--"महाराज, मैं भूल गया--आपका नाम क्या है ?" मुनि की आंखों से तो आग बरसने लगी । उन्होंने कहा--"मूढ़! नासमझ! इतनी जल्दी भूल गया । अभी मैंने तुझसे कहा था, मेरा नाम मुनि शान्तिनाथ है। ...मेरा नाम है--'मुनि शान्तिनाथ।'

दो मिनट तक फिर दूसरी बातें चलती रहीं । फिर उसने पूछा कि "महा-राज, मैं भूल गया--आपका नाम क्या है?" मुनि ने डण्डा उठा लिया और कहा--"चुप, नासमझ ! तुझे मेरा नाम समझ में नहीं आता ? मेरा नाम है 'मुनि शान्तिनाथ ।"

उस मित्र ने कहा--"अब सब समझ गया हूं । सिर्फ वही समझ में नहीं आया, जो मैं पूछता हूं । अच्छा नमस्कार ! आप वही-के-वही हैं, कोई फर्क नहीं पड़ा ।

दमन से कभी कोई फर्क नहीं आता है, लेकिन दमन से चीजें स्वप्न बन जाती हैं । और स्वप्न बन जाना बहुत खतरनाक है, क्योंकि बदली हुई शक्ल में उनको पहचानना भी मुश्किल हो जाता है । आदमी के भीतर सेक्स है, काम-वासना है, उसे पहचानना सरल है; और, अगर आदमी ब्रह्मचर्य साधने की जबरदस्ती कोशिश में लग जाये, तो उस ब्रह्मचर्य के पीछे भी सेक्सुअलिटी होगी, कामुकता होगी । लेकिन, उसको पहचानना बहुत मुश्किल हो जायेगा, क्योंकि वह अब वस्त्र बदल कर आ जायेगी। ब्रह्मचर्य तो वह है, जो चित के परिवर्तन से उपलब्ध होता है, जो जीवन के अनुभव से उपलब्ध होता है । एक शान्ति वह है, जो जीवन की अनुभूति से छाया की तरह आती है और एक शांति वह है, जो क्रोध दबाकर ऊपर से थोप ली जाती है । जो भीतर वासना को दबाकर, उसकी गर्दन को पकड़ कर खड़ा हो जाता है, ऐसा ब्रह्मचर्य कामुकता से भी बदत्तर है; क्योंकि कामुकता तो पहचान में भी आती है, पर ऐसा ब्रह्मचर्य पहचान में भी नहीं आता । दुश्मन पहचान में आता हो तो उसके साथ बहुत कुछ किया भी जा सकता है, और यदि दुश्मन ही पहचान में न आ पाये, तब बहुत कठिनाई हो जाती है ।

मैं एक साध्वी के पास समुद्र के किनारे बैठा हुआ था । वह साध्वी मुझसे

परमात्मा की और आत्मा की बातें कर रही थी...।

हम सभी बातें आत्मा-परमात्मा की करते हैं, जिससे हमारा कोई भी संबंध नहीं है । और जिन बातों से हमारा संबंध है, उनकी हम कोई बात नहीं करते । क्योंकि वे छोटी-छोटी और क्षुद्र बातें हैं। हम आकाश की बातें करते हैं, पृथ्वी की बातें नहीं करते । जिस पृथ्वी पर चलना पड़ता है—और जिस पृथ्वी पर जीना पड़ता है—और जिस पृथ्वी पर जन्म होता है—और जिस पृथ्वी पर लाश गिरती है अन्त में, उस पृथ्वी की हम बात नहीं करते । हम बात आकाश की करते हैं, जहां न हम जी रहे हैं, न रह रहे हैं ।

हम दोनों आत्मा-परमात्मा की बात कर रहे थे...।

आत्मा-परमात्मा की बात आकाश की बात है ।

...कि हवा का एक झोंका आया और मेरी चादर उड़ी और साध्वी को छू गयी, तो वह एकदम घबड़ा गयी । मैंने पूछा, "क्या हुआ ?" उसने कहा, "पुरुष की चादर ! पुरुष की चादर छूने को निषेध है ।"

मैं तो बहुत हैरान हुआ । मैंने कहा, "क्या चादर भी पुरुष और स्त्री हो सकती है ? तब तो यह चमत्कार है ! कि चादर भी स्त्री और पुरुष हो सकती हैं...!"

लेकिन ब्रह्मचर्य के साधकों ने चादर को भी स्त्री-पुरुष में परिवर्तित कर दिया है । यह सेक्सुअलिटी की अति हो गयी, कामुकता की अति हो गयी ।

...मैंने कहा, "अभी तो तुम आत्मा की बातें करती थी, और अभी तुम शरीर हो गयी ? अभी तुम चादर छू जाने से चादर हो गयी ? अभी, थोड़े समय पहले तो तुम आत्मा थी, अब तुम शरीर हो गई, चादर हो गई...।"

अब यह चादर भी सेक्स सिम्बल बन गयी, अब यह भी काम की प्रतीक बन गयी । हवाओं को क्या पता कि चादर भी पुरुष होती है, अन्यथा हवाएं भी चादरों के नियमों का ध्यान रखतीं । यह तो गलती हो गयी चादर के प्रति हवाओं से ।

...वे कहने लगीं, "प्रायश्चित करना होगा, उपवास करना होगा।" मैंने उसे कहा, "करो उपवास जितना करना हो, लेकिन चादर के स्पर्श से जिसको स्त्री और पुरुष का भाव पैदा हो जाता हो, उसका चित्त ब्रह्मचर्य को कभी उपलब्ध नहीं हो सकता...।"

लेकिन नहीं, हम इसी तरह के ब्रह्मचर्य को पकड़े रहेंगे; इसी तरह की झूठी बातों को; इसी तरह की नैतिकता को। इस तरह का धर्म सब झूठा है। दमन जहां है, वहां सब झूठा है। भीतर कुछ और हो रहा है, बाहर कुछ और हो रहा है।

···अब इस साध्वी को दिखायी ही नहीं पड़ सकता कि यह अति कामुकता है। यह रुग्ण कामुकता हो गयी; यह बीमार स्थिति हो गयी कि चादर भी स्त्री और पुरुष होती है। जिस ब्रह्मचर्य में पुरुष और स्त्री न मिट गये हों, वह ब्रह्मचर्य नहीं है।

कुछ युवक एक रात्रि एक वेश्या को साथ लेकर सागर तट पर आये। उस वेश्या के वस्त्र छीनकर उसे नंगा कर दिया और शराब पीकर वे नाचने गाने लगे। उन्हें शराब के नशे में डूबा देखकर वह वेश्या भाग निकली। रात जब उन युवकों को होश आया, तो वे उसे खोजने निकले। वेश्या तो उन्हें नहीं मिली, लेकिन एक झाड़ के नीचे बुद्ध बैठे हुए उन्हें मिलें। वे उनसे पूछने लगे. "महाशय, यहां से एक नंगी स्त्री को, एक वेश्या को भागते तो नहीं देखा? रास्ता तो यही है। यहीं से ही गुजरी होगी। आप यहां कब से बैठे हुए हैं?"

बुद्ध ने कहा, "यहां से कोई गुजरा जरूर है, लेकिन वह स्त्री थी या पुरुष, यह मुझे पता नहीं है। जब मेरे भीतर का पुरुष जागा हुआ था, तब मुझे स्त्री दिखायी पड़ती थी। न भी देखूं, तो भी दिखायी पड़ती थी। बचना भी चाहूं, तो भी दिखायी पड़ती थी। आंखें किसी भी जगह और कहीं भी कर लूं, तो भी ये आंखें स्त्री को ही देखती थीं। लेकिन जब से मेरे भीतर का पुरुष विदा हो गया है, तबसे बहुत ख्याल करूं तो ही पता चलता है कि कौन स्त्री है, कौन पुरुष है। वह कौन था जो यहां से गुजरा है, यह कहना मुश्किल है। तुम पहले क्यों नहीं आये? पहले कह गये होते कि यहां से कोई निकले तो ध्यान रखना, तो मैं ध्यान रख सकता था। और यह बताना तो और भी मुश्किल है कि जो निकला है, वह नंगा था या वस्त्र पहने हुये था। क्योंकि, जब तक अपने नंगेपन को छिपाने की इच्छा थी, तब तक दूसरे के नंगेपन को देखने की भी बड़ी इच्छा थी। लेकिन, अब कुछ देखने की इच्छा नहीं रह गयी है। इसलिए, ख्याल में नहीं आता कि कौन क्या पहने हुए है...।"

दूसरे में हमें वही दिखायी देता है, जो हममें होता है। दूसरे में हमें वही दिखायी देता है, जो हममें है। और दूसरा आदमी एक दर्पण की तरह काम करता

है, उसमें हम ही दिखायी पड़ते हैं। बुद्ध कहने लगे—"अब तो मुझे याद नहीं आता, क्योंकि किसी को नंगा देखने की कोई कामना नहीं है। मुझे पता नहीं कि वह कपड़ पहने थी या नहीं पहने थी।"

···वे युवक कहने लगे, "हम उसे लाये थे अपने आनन्द के लिए। लेकिन, वह अचानक भाग गयी है। हम उसे खोज रहे हैं।"

बुद्ध ने कहा, "तुम जाओ और उसे खोजो। भगवान् करे, किसी दिन तुम्हें यह ख्याल आ जाये, कि इतनी खूबसूरत और शान्त रात में अगर तुम किसी और को न खोज कर अपने को खोजते, तो तुम्हें वास्तविक आनंद का पता चलता। लेकिन, तुम जाओ और खोजो दूसरों को। मैंने भी बहुत दिन तक दूसरों को खोजा, लेकिन दूसरों को खोज कर मैंने कुछ भी नहीं पाया। और जबसे अपने को खोजा, तब से वह सब पा लिया है, जिसे पाकर कोई भी कामना पाने की शेष नहीं रहती।"

यह बुद्ध ब्रह्मचर्य में रहे होंगे। लेकिन, चादर पुरुष हो जाये तो ब्रह्मचर्य नहीं है। और यह दुर्भाग्य है कि दमन के कारण सारे देश का व्यक्तित्व कुरूप, विकृत; परवर्टेड हो गया है। एक-एक आदमी भीतर उल्टा है, बाहर उल्टा है। भीतर आत्मा शीर्षासन कर रही है। भीतर हम सब सिर के बल खड़े हुए हैं। जो नहीं है भीतर, वह हम बाहर दिखला रहें हैं। और दूसरे धोखे में आ जायें, इससे कोई बहुत हर्जा नहीं है; स्वयं ही धोखा खा जाते हैं। लम्बे अर्से में हम यह भूल ही जाते हैं कि हम यह क्या कर रहे हैं।

दमन, मनुष्य की आत्मा की असलियत को छिपा देता है और झूठा आवरण पैदा कर लेता है। और, फिर इस दमन में हम, जिन्दगी भर जिसे दमन किया है, उससे ही लड़कर गुजारते हैं। ब्रह्मचर्य की साधना करने वाला आदमी चौबीस घण्टे सेक्स सेन्टर में ही जिन्दगी व्यतीत करता है; उपवास करने वाला चौबीस घण्टे भोजन करता है। आपने कभी उपवास किया हो तो आपको पता होगा।

उपवास करें और चौबीस घण्टे भोजन करना पड़ेगा। हां, भोजन मानसिक होगा, शारीरिक नहीं। लेकिन, शारीरिक भोजन का कुछ फायदा भी हो सकता है, मानसिक भोजन का सिवाय नुकसान के और कोई भी फायदा नहीं है। जिसने दिन भर खाना नहीं खाया है, वह दिन भर खाने की इच्छा से भरा हो, यह स्वाभाविक है।

नहीं, उपवास का यह अर्थ नहीं है कि आदमी खाना न खाये। उपवास का अर्थ अनाहार नहीं है। अनाहार करने वाला दिन भर आहार करता है। उपवास का अर्थ दूसरा है। दमन नहीं है उपवास का अर्थ; लेकिन दमन ही उसका अर्थ बन गया है। उपवास का अर्थ भोजन 'न-करना' नहीं है। उपवास का अर्थ है : आत्मा के निकट आवास। और, आत्मा के निकट कोई इतना पहुंच जाये कि उसे भोजन का ख्याल ही न आये, तो वह बात ही दूसरी है; कोई इतने भीतर उतर जाये कि बाहर का पता भी न चले कि शरीर भूखा है, वह बात दूसरी है; कोई इतने गहरे में चला जाये कि शरीर को प्यास लगी है कि भूख लगी है, भीतर इसकी खबर ही न पहुंचती हो, तो यह बात दूसरी है। लेकिन कोई—भोजन नहीं छूऊंगा—ऐसा संकल्प करके बैठ जाये, तो दिन भर उसको भोजन करना पड़ता है; वह उपवास में नही होता।

दमन, धोखा पैदा करता है। दमन, वह जो असलियत है—उपलब्धि की, अनुभूति की; वह जो सत्य है उसकी तरफ बिना ले जाय बाहर परिधि पर ही सब नष्ट करके जबरदस्ती कुछ पैदा करने की कोशिश करता है। और यह कोशिश बहुत महंगी पड़ जाती है। हिन्दुस्तान में ब्रह्मचर्य की बात चल रही है तीन-चार हजार वर्ष से। और इस बात को कहने में मुझे जरा भी अतिशयोक्ति नहीं मालूम पड़ती कि आज इस पृथ्वी पर हमसे ज्यादा कामुक कोई समाज नहीं है। चौबीस घण्टे हम काम से लड़ रहे हैं। छोटे बच्चे से लेकर मरते हुए बूढ़े तक की सेक्स से लड़ाई चल रही है। और जिससे हम लड़ते हैं, वही हमारे भीतर घाव की तरह हो जाता है।

कोरिया में दो फकीर हुये हैं। मैंने उनके जीवन के बारे में पढ़ा था। दो भिक्षु एक दिन शाम अपने आश्रम वापस लौट रहे हैं। उनमें एक बूढ़ा भिक्षु है, एक युवा भिक्षु है। आश्रम के पहले ही एक छोटी-सी पहाड़ी नदी पड़ती है। सांझ हो गयी है, सूरज ढल रहा है। एक युवती खड़ी है उसी नदी के किनारे। उसे भी नदी पार होना है। लेकिन वह डरती है, क्योंकि नदी अनजान है, परिचित नहीं है; पता नहीं, कितनी गहरी हो? इसलिये भयभीत है। वह बूढ़ा भिक्षु आगे-आगे आ रहा है। उसको भी समझ में पड़ गया है कि वह स्त्री पार होने के लिए, शायद किसी का सहारा चाहती है। बूढ़े भिक्षु का मन हुआ है कि हाथ से सहारा देकर उसे नदी पार करवा दे। लेकिन हाथ का सहारा देने का ख्याल भर ही उसे आया है कि भीतर वर्षों की दबी हुई वासना एकदम खड़ी हो गयी

है। युवती के हाथ को छूने की कल्पना से उसके भीतर जैसे उसकी नस-नस में, रग-रग में बिजली दौड़ गयी है। तीस वर्ष से स्त्री को नहीं छुआ है उसने। और अभी तो सिर्फ छुने का ख्याल ही आया है उसे, कि युवती को हाथ का सहारा दे दे, लेकिन सारे प्राण कंप गये हैं उसके। एक तरह के बुखार ने उसके सारे व्यक्तित्व को घेर लिया है। तत्काल अपने मन को समझाया उसने कि, "यह कैसी गन्दी बात सोची, कैसे पाप की बात सोची! मुझे क्या मतलब है? कोई नदी पार हो या न हो, मुझे क्या प्रयोजन है? मैं अपना जीवन क्यों बिगाड़ूं; अपनी साधना क्यों बिगाड़ूं? इतनी कीमती साधना, तीस वर्ष की साधना, इस लड़की पर लगा दूं...।"

बड़ी बहुमूल्य साधना चल रही थी; और ऐसी ही बहुमूल्य साधना के सहारे लोग मोक्ष तक पहुंचना चाहते हैं! ऐसी ही कीमती और मजबूत साधना के पुण्य पर चढ़कर लोग परमात्मा की यात्रा करना चाहते हैं।

...आंख बन्द कर ली थी उसने, लेकिन वह स्त्री तो आंख बन्द करने पर भी दिखायी पड़ने लगी; बहुत जोर से दिखायी पड़ने लगी। क्योंकि मन जाग गया था; सोयी हुई वासना जाग गयी थी। आंख बन्द करके ही वह नदी में उतरा...।

अब यह आपको पता होगा कि जिस चीज से आंख बन्द कर ली जाय, वह उतनी सुन्दर कभी नहीं होती, जितनी आंख खुली होने पर होती है। आंख बन्द करने से वह ज्यादा सुन्दर प्रतीत होती है।

आंख बन्द की उसने और वह स्त्री अप्सरा हो गयी...।

अप्सराएं इसी तरह पैदा होती हैं। बन्द आंख से वे पैदा हो जाती हैं। दुनिया में सिर्फ स्त्रियां हैं, आंख बन्द करो कि वे ही अप्सराएं हो जाती हैं। अप्सराएं कहीं भी नहीं हैं; लेकिन आंख बन्द होते ही स्त्री अप्सरा हो जाती है। मनमें एकदम से कामुकता पैदा हो जाती है; फूल खिल जाते हैं; चांदनी फैल जाती है। एक ऐसी सुगन्ध फैल जाती है मन में, जो स्त्री में कहीं भी नहीं है; जो सिर्फ आदमी की कामवासना के सपने में होती है। आंखे बन्द करते ही सपना शुरू हो जाता है।

...अब वह भिक्षु उस स्त्री को ही देख रहा है। अब एक ड्रीम, एक सपना शुरू हो गया है। अब वह स्त्री उसे बुला रही है। उसका मन कभी कहता है कि यह तो बड़ी बुरी बात है कि किसी असहाय स्त्री को सहारा न दो।

फिर तत्काल उसका दूसरा मन कहता है कि यह सब बेईमानी है, अपने को धोखा देने की तरकीब कर रहे हो। यह सेवा वगैरह नहीं है, तुम स्त्री को छूना चाहते हो...।

बड़ी मुश्किल है स्त्री। साधुओं की बड़ी मुश्किल होती है। काम है भीतर, तनाव है भीतर। सारा प्राण पीछे लौट जाना चाहता है, और वह दमन करने वाला मन आगे चले आना चाहता है। नदी के छोटे-से घाट पर वह आदमी भीतर दो हिस्सों में बंट गया है; एक हिस्सा आगे जा रहा है, एक हिस्सा पीछे जा रहा है। उसकी अशांति, उसका टेन्शन, उसकी तकलीफ, भारी हो गयी है। आधा हिस्सा इस तरफ जा रहा है, आधा हिस्सा उस तरफ जा रहा है। किसी तरह खींच-तान कर वह पार हुआ है। आंख खोल कर देखना चाहता है, लेकिन बहुत डरा हुआ है। भगवान् का नाम लेता है, जोर-जोर से भगवान का नाम लेता है—नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय...!

भगवान् का नाम आदमी जब भी जोर-जोर से ले, तब समझ लेना कि भीतर कुछ गड़बड़ है। भीतर की गड़बड़ को दबाने के लिए आदमी जोर-जोर से भगवान् का नाम लेता है। आदमी को ठण्ड लग रही हो, नदी में नहाते वक्त, तो 'सीता-राम, सीता-राम' का जाप करने लगता है। बेचारे सीता-राम को क्यों तकलीफ दे रहे हो! पर वह ठण्ड जो लग रही है। सीता-राम उस ठण्ड को भुलाने की तरकीब है। अंधेरी गली में आदमी जाता है और कहता है, 'अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम'! वह अंधेरे की घबड़ाहट से बचने की कोशिश है। जो आदमी परमात्मा के निकट जाता है, वह चिल्ल पों नहीं करता है भगवान् के नाम की; वह चुप हो जाता है। जितने भी चिल्ल पों और शोर गुल मचाने वाले लोग हैं, समझ लेना कि उनके भीतर कुछ और चल रहा है; भीतर काम चल रहा है, और ऊपर राम का नाम चल रहा है।

...भीतर उसे औरत खींच रही है और वह किसी तरह भगवान का सहारा लेकर आगे बढ़ा जा रहा है; कि कहीं ऐसा न हो कि औरत मजबूत हो जाये और नीचे खींच ले। और उस बेचारी को पता भी नहीं कि साधु किस मुसीबत में पड़ गया है। वह अपने रास्ते पर खड़ी है। तभी उस साधु को ख्याल आया कि पीछे उसका जवान साधु कहां है। लौट कर उसने देखा कि उसको सचेत कर दे कि वह कहीं उसपर दया करने की भूल में न पड़ जाये लेकिन लौटकर उसने देखा तो भूल हो चुकी थी। वह जवान भिक्षु उस औरत

को कन्धे पर लिये नदी पार कर रहा था। वह देखकर आग लग गयी उस बूढ़ साधु को। न-मालूम कैसा-कैसा मन होने लगा उसका। कई बार उसके मन में होने लगा कि कितना अच्छा होता अगर मैं भी उसे कन्धा लगाये होता! फिर उसने स्वयं को झिड़का—'यह क्या पागलपन की बात, मैं और उस औरत को कन्धे पर ले सकता हूं? तीस साल की साधना नष्ट करूंगा? गन्दगी का ढेर है औरत का शरीर, तो उसको कन्धे पर लूंगा? नर्क का द्वार है स्त्री, और उसको कन्धे पर लिया है?'

लेकिन वह दूसरा भिक्षु लिये आ रहा है। आग लग गयी उसे! आज जाकर गुरु को कहूंगा कि यह युवक भ्रष्ट हो गया, पतित हो गया; इसे निकालो आश्रम के बाहर।'

उस भिक्षु ने उस युवती को किनारे पर छोड़ दिया और अपने रास्ते चल पड़ा। फिर वे दोनों चलते रहे, लेकिन बूढ़े ने कोई बात न की। जब वे आश्रम के द्वार की ओर बढ़ रहे थे तो उस बूढ़े भिक्षु ने सीढ़ियों पर खड़े होकर कहा, "याद रखो, मैं चलकर गुरु को कहूंगा कि तुम पतित हो चुके हो। तुमने उस स्त्री को कन्धे पर क्यों उठाया?"

वह भिक्षु एकदम से चौंका। उसने कहा, "स्त्री! उसे मैंने उठाया था और नदी पार छोड़ भी दिया। लेकिन ऐसा मालूम होता है कि आप उसे अभी भी कन्धे पर लिये हुए हैं!"

"यु आर स्टिल कैरिंग हर आन योर शोल्डर। आप अभी भी ढो रहे हैं उसे कन्धे पर! मैं तो उसे उतार भी आया। और आपने तो उसे कन्धे पर कभी लिया भी नहीं था; आप अभी तक ढो रहे हैं? मैं तो घंटे भर से सोचता था कि आप किसी ध्यान में लीन हैं। मुझे यह खबर भी न थी कि आप ध्यान कर रहे हैं उस युवती का; कि उस स्त्री को नदी के पार करा रहे हैं, अब तक!"

यह तो मैंने कहानी सुनी थी। ठीक ऐसी ही कहानी अभी मेरे साथ हो गयी है दिल्ली में, वह आप लोगों को बताऊं। एक महिला आयी और मुझसे उसने पूछा; "मैं यहां ठहर जाऊं आपके पास?" मैंने कहा, "बिलकुल ठहर जाओ।" मुझे पता नहीं था कि मनु भाई पटेल को बड़ी तकलीफ हो जायेगी इस बात से। अगर मुझे पता होता तो संसद-सदस्य को मैं तकलीफ नहीं देता। मैं किसी को तकलीफ नहीं देना चाहता। कहता, "देवी, तुम्हारे ठहरने से मुझे तकलीफ

नहीं हैं, लेकिन मनु भाई पटेल को, बड़ोदा वालों को तकलीफ हो जायेगी; और किसी को तकलीफ देना अच्छा नहीं है। तो तुम्हें ठहरना है तो जाओ, मनु भाई के कमरे में ठहर जाओ; यहां मेरे पास किस लिए ठहरती हो।''

लेकिन मुझे पता ही नहीं था। पता होता तो यह भूल न होती। यह भूल हो गयी, अज्ञान में। वह आकर सो गई मेरे कमरे में. लेकिन दूसरे दिन बड़ी तकलीफ हो गयी। मुझे पता चला कि मनु भाई को और उनके मित्रों को बहुत कष्ट हो गया है इस बात से कि मेरे कमरे में वह सो गयी। मैं तो हैरान हुआ कि वह कमरे में मेरे सोयी, तकलीफ उनको हो गयी!

लेकिन आदमी कन्धे पर उन चीजों को ढोने लगता है, जिनको लेकर उसके भीतर कोई लड़ाई जारी रहती है। पता नहीं चलता, ख्याल में नहीं आता कि यह सब भीतर क्या हो रहा है। तो मैंने सोचा कि वह मनु भाई मुझे मिलें तो उनसे कहूं कि 'सर, यू आर स्टिल कैरिंग हर ऑन योर शोल्डर?' अभी भी ढो रहे हैं उस औरत को अपने कन्धों पर? मैंने उनको वहीं दिल्ली में कहा कि मनु भाई, पीछे तकलीफ होगी। पीछे यह बात चलेगी, मिटने वाली नहीं है। तो यह बात अभी कर लें सबके सामने। तो उन्होंने कहा, "क्या बात करनी है; कुछ हर्जा नहीं; जो हो गया, हो गया।'' लेकिन मैं जानता था, बात तो उठेगी; बात तो करनी ही पड़ेगी। फिर वे संसद-सदस्य हैं। संसद-सदस्यों को मुझ-जैसे-फकीरों के आचरण का ध्यान रखना चाहिए, नहीं तो मुल्क का आचरण बिगाड़ देंगे। और फिर ऐसे संसद-सदस्य हैं, इसलिए तो मुल्क का आचरण इतना अच्छा है, नहीं तो कभी का बिगड़ जाता। धन्यभाग हैं, हमारे मुल्क का आचरण कितना अच्छा है, अच्छे संसद-सदस्यों के कारण! जो पता लगाते हैं कि किसके कमरे में कौन सो रहा है। इसका हिसाब रखते हैं। ये लोक-सेवक हैं। लोक-सेवक ऐसा ही होना चाहिए। मुझे तो जैसे खबर मिली, मैंने सोचा कि इस बार इलेक्शन के वक्त अगर मुझे वक्त मिला तो जाऊंगा बड़ोदा में, लोगों से कहूंगा कि मनु भाई को ही वोट देना, इस तरह के लोगों की वजह से देश का चरित्र ऊंचा है।

लेकिन, यह जो दिमाग है, यह दिमाग कहां से पैदा होता है? यह दिमाग कहां से आता है? यह भीतर क्या छिपा हुआ है...?

यह भीतर है, दमन की लम्बी परम्परा। यह एक आदमी का सवाल नहीं है। यह हमारे पूरे जातीय संस्कार का सवाल है; यह मनु भाई का सवाल

नहीं है। वह तो प्रतिनिधि हैं—हमारे और आपके; हमारी सब बीमारियों के —वह जो हमारे भीतर छिपा है, उसके। हमारे भीतर क्या छिपा है...?

हमने एक अजीब सप्रेशन की धारा में अपने को जोड़ रखा है। दबा रहे हैं, सब। वह दबाया हुआ घाव हो जाता है। वह घाव पीड़ा देता है। उस घाव की वजह से हमें बाहर वही-वही दिखायी पड़ने लगता है, जो-जो हमारे भीतर है। सारा जगत् फिर एक दर्पण बन जाता है।

यह सप्रेशन की लम्बी धारा, यह दमन की लम्बी यात्रा व्यक्तित्व को नष्ट करती है। इसने जीवन के सारे स्रोतों को पॉयजन से भर दिया है, जहर से भर दिया है। जीवन के सारे स्रोत विकृत और कुरूप हो गये हैं। इसलिये यह तीसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं कि दमन से बचना। अगर जीवन को और सत्य को जानना हो, और कभी प्रभु के, परमात्मा के द्वार पर दस्तक देनी हो, तो दमन से बचना। क्योंकि दमन करने वाला चित्त परमात्मा तक कभी नहीं पहुँचता। वह वहीं रुक जाता है, जहां दमन करता है। उसको वहीं ठहरना पड़ता है, क्योंकि जरा सा भी हटा कि दमन उखड़ जायगा और जिसको दबाया है वह प्रगट होना शुरू हो जायेगा।

अगर आप एक आदमी की छाती पर सवार हो गये हैं तो फिर आप उसको छोड़कर नहीं जा सकते, क्योंकि छोड़कर आप जैसे ही गये कि वह आपके ऊपर हमला कर देगा। अगर किसी आदमी की छाती पर आप सवार हो गये तो आप समझना कि जितना आपने उसे दबा रखा है, उससे भी ज्यादा आप उससे दबा गये हैं! क्योंकि आप छोड़कर उसे नहीं हट सकते।

मनुष्य जिन चीजों को दबा लेता है, उन्हीं के साथ बंध जाता है वह उनको छोड़कर हट नहीं सकता; और कहीं भी नहीं जा सकता। इसलिए दमन से अक्सर साधक को सावधान रहना चाहिए। दमन, पैदा करेगा—पागलपन, विक्षिप्तताएं, इन्फिरिआरिटि। जितने मनस्-चिकित्सक हैं, उनसे पूछिये, वे क्या कहते हैं। वे कहते हैं, सारी दुनिया पागल हुई जा रही है दमन के कारण। पागलखाने में सौ आदमी बन्द हैं, उनमें अट्ठानबे आदमी दमन के कारण बन्द हैं जिन्होंने बहुत जोर से दबा लिया है; एक विस्फोट की आग को भीतर रख लिया है। वह विस्फोट फूटना चाहता है, वह सारे व्यक्तित्व को किसी दिन तोड़ देता है; किसी दिन खण्ड-खण्ड बिखेर देता है सारे मकान को। एक दिन आदमी बिखर कर, टूट कर खड़ा हो जाता है। इसलिए, जितना आदमी सभ्य

होता चला जा रहा है, उतना ही पागल होता जा रहा है, क्योंकि सभ्यता का सूत्र दमन है।

नहीं, स्वभाव को अगर जानना है, तो दमन से वह नहीं जाना जा सकता। लेकिन, तब आप पूछेंगे कि जब क्रोध आये तो क्रोध करना चाहिए? वासना आये तो वासना भोगनी चाहिए? क्या आप लोगों को वासना में डूब जाने के लिए कहते हैं...?

बिलकुल नहीं, जरा भी नहीं कहता हूं। दमन से बचने को कह रहा हूं, अभी भोग करने को नहीं कह रहा हूं। अभी एक सूत्र समझ लें, कल दूसरे सूत्र की बात करेंगे। दमन से बचने का अर्थ भोग में कूद जाना नहीं है; अनिवार्यरूपेण वही एक आल्टरनेटिव नहीं है। और विकल्प भी है। उस विकल्प पर हम कल बात करेंगे। इसलिए जल्दी से नतीजा लेकर घर मत लौट जाना। मेरी बातों से जल्दी नतीजा नहीं लेना चाहिए, नहीं तो बड़ी मुश्किल हो जाती है।

दमन नहीं, खुद के व्यक्तित्व से संघर्ष नहीं, खुद के व्यक्तित्व से द्वन्द्व नहीं—क्योंकि खुद के व्यक्तित्व से द्वन्द्व का अर्थ है, जैसे मैं अपने दोनों हाथों को आपस में लड़ाने लगूं। कौन जीते, कौन हारे; दोनों हाथ मेरे हैं! दोनों हाथों के पीछे लड़ने वाली शक्ति मेरी है! दोनों हाथों के पीछे मैं हूं। कौन जीतेगा...?

कोई नहीं जीत सकता। मेरे ही दोनों हाथों की लड़ाई में कोई नहीं जीत सकता; क्योंकि जीतने वाले दो हैं ही नहीं। लेकिन, एक अद्भुत घटना घट जायेगी। जीतेगा तो कोई नहीं—न बायां, न दायां, लेकिन मैं हार जाऊंगा दोनों की लड़ाई में; क्योंकि मेरी शक्ति दोनों के साथ नष्ट होगी। और, मैं हार जाऊं या शक्ति को क्षीण होने दूं—जो भी दमन कर रहा है, वह किसका दमन कर रहा है...? अपना ही; अपने ही चित्त के खण्डों को दबा रहा है। किससे दबा रहा है...? चित्त के दूसरे खण्डों से दबा रहा है। चित्त के एक खण्ड से चित्त के दूसरे खण्ड को दबा रहा है। खुद को ही, खुद से दबा रहा है।

ऐसा आदमी अगर पागल हो जाये अन्ततः, तो आश्चर्य ही क्या है। वह तो आदमी पागल नहीं हो पाता, क्योंकि दमन सिखाने वालों की बात पूरी तरह से कोई भी नहीं मानता है। नहीं तो सारी मनुष्यता पागल हो जाती। वह दमन सिखाने वालों की बात पूरी तरह से कोई नहीं मानता है। और न

मानने की वजह से थोड़ा-सा रास्ता बचा रहता है कि आदमी बच जाता है। और न मानने की वजह से, ऊपर से दिखलाता है कि मानता हूं; भीतर से पूरा मानता नहीं, ऊपर से दिखलाता है कि मानता हूं; इसलिए पाखण्ड और हिपॉक्रिसि पैदा होती है। हिपॉक्रिसि दमन की सगी बहन है। वह जो पाखण्ड है, वह दमन का चचेरा भाई है। दमन चलेगा, तो पाखण्ड पैदा होगा। अगर पाखण्ड पैदा न होगा, तो पागलपन पैदा होगा। पागलपन से बचना हो तो पाखण्डी हो जाना पड़ेगा। दुनिया को दिखाना पड़ेगा। दुनिया को दिखाना पड़ेगा ब्रह्मचर्य और पीछे से वासना के रास्ते खोजने पड़ेंगे। दुनिया को दिखाना पड़ेगा कि मेरे लिये तो धन मिट्टी है और भीतर गुप्त मार्गों से तिजोडियां बन्द करनी पड़ेंगी। वह भीतर से चलेगा।

लेकिन, यह पाखण्ड बचा रहा है आदमी को, नहीं तो आदमी पागल हो जाये। अगर सीधा-सादा आदमी दमन के चक्कर में पड़ जाये तो पागल हो जाये। ये साधु संन्यासी बहुत बड़े अंश में पागल होते देखे जाते हैं, इसका कारण आपको मालूम है? लोग समझते हैं, भगवान का उन्माद छा गया है। भगवान का कोई उन्माद नहीं होता; सब उन्माद भीतर के दमन से पैदा होते हैं। भीतर दमन बहुत हो तो रोग पैदा हो जाता है, उन्माद पैदा हो जाता है, पागलपन पैदा हो जाता है। लेकिन उसको हम कहते हैं—हर्षोन्माद, एक्सटेसी!

वह एक्सटेसी वगैरह नहीं है, मैडनेस है। या तो आदमी पूरा दमन करे तो पागल होता है, या फिर पाखण्ड का रास्ता निकाल ले तो बच जाता है। और पाखण्डी होना पागल होने से अच्छा नहीं है। पागल में फिर भी एक सिन्सेरिटि है, पागल की फिर भी एक निष्ठा है; पाखण्डी की तो कोई निष्ठा नहीं होती; कोई नैतिकता, कोई ईमानदारी नहीं होती।

अपने से नहीं लड़ना है। आप अपने से लड़े कि आप गलत रास्ते पर गये। अपने से लड़ना अधार्मिक है। दमन, 'मात्र अधार्मिक' है। दमन मात्र ने मनुष्य को जितना नुकसान पहुँचाया है, उतना दुनियां में और किसी शत्रु ने कभी नहीं पहुँचाया। उस दिन ही मनुष्य पूरी तरह स्वस्थ होता है, जिस दिन सारे दमन से मुक्त हो जाता है; जिस दिन उसके भीतर कोई कान्फिलक्ट, कोई द्वन्द्व नहीं होता। जिस दिन भीतर द्वन्द्व नहीं होता है, उसी दिन उसे एक दर्शन होता है, जो भीतर है।

अगर ठीक से समझें, तो दमन मनुष्य को विभक्त करता है; डिव्हाइड करता है। दमन जिस व्यक्ति के भीतर होगा, वह इनडिवीजुअल नहीं रह

जायेगा, वह व्यक्ति नहीं रह जायेगा; वह विभक्त हो जायेगा, उसके कई टुकड़े हो जायेंगे; वह सीज़ोफ्रेनिक हो जायेगा।

दमन न हो व्यक्ति में तो योग की स्थिति उपलब्ध होती है। योग का अर्थ है—जोड़; योग का अर्थ है--इन्टेग्रिटि; योग का अर्थ है--अखण्डता, एक। लेकिन एक कौन हो सकता है? एक व्यक्तित्व किसका हो सकता है...? उसका, जो लड़ नहीं रहा है; उसका, जो अपने को खण्ड-खण्ड नहीं तोड़ रहा है; जो अपने भीतर नहीं कह रहा है--यह बुरा है, यह अच्छा है; इसको बचाऊंगा, उसको छोड़ूंगा। जिसने भी अपने भीतर बुरे अच्छे का भेद किया, वह दमन में पड़ जायेगा।

दमन से बचने का सूत्र है; अपने भीतर जो भी है, उसकी पूर्ण स्वीकृति, टोटल एक्सप्टेबिलिटी। जो भी है; सेक्स है, लोभ है, क्रोध है, मान है--जो भी है भीतर, उसकी सर्वांगीण स्वीकृति प्राथमिक बात है। तो व्यक्ति आत्म-ज्ञान की तरफ विकसित होगा। अगर उसने अस्वीकार किया कि मैं अस्वीकार करता हूं, उसने कहा कि मैं लोभ को फेंक दूंगा, 'उसने कहा कि मैं क्रोध को फेंक दूंगा, तो फिर वह कभी भी शान्त नहीं हो पायेगा; इस फेंकने में ही अशान्त हो जायेगा। और, इसीलिए तो संन्यासी जितने क्रोधी और अहंकारी देखे जाते हैं, उतने साधारण लोग क्रोधी नहीं होते। संन्यासी का क्रोध और अहंकार बहुत अद्भुत है। दुर्वासा की कथाएं तो हम जानते हैं।

संन्यासी में इतना अंहकार कि दो संन्यासी एक-दूसरे को मिल नहीं सकते; क्योंकि कौन किसको पहले नमस्कार करेगा! दो संन्यासी एक साथ बैठ नहीं सकते; क्योंकि किसका तख्त ऊंचा होगा और किसका नीचा होगा! ये संन्यासी नहीं, पागल हैं। जो तख्त की ऊंचाई नापने में लगे हुए हैं, उन्हें परमात्मा की ऊंचाई का पता भी क्या होगा।

मैं कलकत्ते में एक सर्व-धर्म-सम्मेलन में बोलने गया था। वहां कई तरह के संन्यासी, कई धर्मों के उन्होंने आमंत्रित किये थे। उन संयोजकों को क्या पता बेचारों को कि सब संन्यासी एक मंच पर नहीं बैठेंगे। कोई उसमें शंकराचार्य हो सकते हैं, वे अपने सिंहासन पर बैठेंगे। और शंकराचार्य सिंहासन पर बैठे तो दूसरा आदमी कैसे नीचे बैठ सकता है! संयोजकों ने मुझे आकर कहा कि सबकी खबरें आ रही हैं कि हमारे बैठने का इन्तजाम क्या है?

बच्चों-जैसी बात मालूम पड़ती है। जैसे, छोटे-छोटे बच्चे कुर्सी पर खड़े हो

जाते हैं और अपने बाप से कहते हैं, 'तुम मुझसे नीचे हो।' बच्चों से ज्यादा बुद्धि इनकी नहीं मालूम पड़ती है। तख्त ऊंचा-नीचा रखने से ज्यादा उनकी बुद्धि नहीं है, कि तख्त नीचा हो जायेगा तो हम नीचे हो जायेंगे। हद हो गयी, इस भांति से ऊंचा होना बहुत आसान हो गया! लेकिन दबा रहे हैं अहंकार को। तो अहंकार दूसरे रास्ते से खोज कर रहा है निकलने के लिए। अहंकार को दबा रहे हैं, इधर कह रहे हैं, 'मैं कुछ भी नहीं हूं। हे परमात्मा, मैं तो तेरी शरण में हूं।' उधर वह अहंकार कह रहा है--अच्छा ठीक है बेटे, उधर तुम शरण में जाओ, इधर हम दूसरा रास्ता खोजते हैं। हम कहते हैं कि सोने का सिंहासन चाहिए; क्योंकि हमसे ज्यादा भगवान की शरण में और कोई भी नहीं गया है!

तो इनको सोने का सिंहासन चाहिए। इधर, 'मैं कुछ भी नहीं हूं; आदमी तो कुछ भी नहीं है; सब संसार माया है; और उधर? उधर, अगर जगत्गुरु न लिखें उनके नाम के आगे तो वे नाराज हो जाते हैं कि मुझे जगत्गुरु नहीं लिखा!'

...और मजा यह है कि जगत् से पूछे बिना ही गुरु हो गये हैं? जगत् से भी तो पूछ लिया होता, यह जगत् बहुत बड़ा है...!

एक गांव में मैं गया था। वहां भी एक जगत्गुरु थे।

...जगत्गुरुओं की कोई कमी है! जिसको भी ख्याल पैदा हो जाय, वह जगत्गुरु हो सकता है! इस वक्त सबसे सस्ता काम यही है...!

गांव में जगत्गुरु थे। मैंने पूछा, "इतना छोटा-सा गांव, जगत्गुरु कहां से आये?" उन्होंने कहा, "वे यहां ही रहते हैं सदा से।" मैंने कहा, "जगत् से पूछ लिया है उन्होंने?" उन्होंने कहा, "जगत् से नहीं पूछा, लेकिन वे बहुत होशियार आदमी हैं। उनका एक शिष्य है।" मैंने कहा, "और कितने हैं?" उन्होंने कहा "बस, एक ही है। लेकिन उसका नाम उन्होंने जगत् रख लिया है। तो वे जगत्गुरु हो गये हैं।"

बिलकुल ठीक बात है। अब और कोई कमी नहीं रह गई है। अदालत में मुकदमा नहीं चला सकते हैं इस आदमी पर। यह जगत्गुरु है। सारे जगत्गुरु इसी तरह के हैं। किसी का एक शिष्य होगा, किसी के दस होंगे लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है। इधर वे कहते हैं, 'मैं तो कुछ भी नहीं, आदमी तो माया है; असली तो ब्रह्म है—एक ही ब्रह्म है—और उधर जगत्गुरु होने का लोभ सवार हो जाता है!

वह अहंकार, इधर से बचाओ उधर से रास्ता खोजता है। आदमी जिस-जिस को दबायेगा, वही-वही नये-नये मार्गों से प्रगट होगा। दमन करके कभी कोई किसी चीज को नहीं समझ सका। इसलिए दमन से बचना है, दमन से सावधान रहना है। दमन ही मनुष्य को तोड़ता है। और, अगर जुड़ना है, और एक हो जाना है, तो दमन से बच जाना चाहिए।

चौथे सूत्र पर मैं आपसे कल बात करूंगा कि जब हम दमन से बचेंगे तो फिर भोग एकदम से निमंत्रण देगा कि आओ, अब तो क्रोध से बचना नहीं है, इसलिए आओ, क्रोध करो; अब तो सेक्स से बचना नहीं है, इसलिए आओ और सेक्स में डूबो; अब तो लोभ से बचना नहीं है, इसलिए दौड़ो और रुपये इकट्ठे करो। जैसे ही हम इस दमन से बचेंगे, वैसे ही भोग निमन्त्रण देगा कि आ जाओ।

उस भोग से बचने के लिए भी क्या करना है, उसकी कल के सूत्र में आपसे बात करूंगा। मेरी बातों को इतनी शांति से और प्रेम से सुना, उससे बहुत बहुत अनुग्रहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हू, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

चौथा प्रवचन

बड़ौदा, १५ फरवरी, १९६९

न भोग, न दमन—वरन् जागरण

मेरे प्रिय आत्मन,

तीन सूत्रों पर हमने बात की है। जीवन क्रान्ति की दिशा में पहला सूत्र था—'सिद्धान्तों से, शास्त्रों से मुक्ति।' जो व्यक्ति किसी भी तरह के मानसिक कारागृह में बन्द है, वह जीवन की, सत्य की, खोज नहीं कर सकता है। और वे लोग, जिनके हाथों में जंजीरें हैं, उतने बड़े गुलाम नहीं हैं—जितने वे लोग, जिनकी आत्मा पर विचारों की जंजीरें हैं; वादों, सिद्धांतों, सम्प्रदायों की जंजीरें हैं। आदमी की गुलामी मानसिक है।

दूसरा सूत्र था—'भीड़ से मुक्ति।' भीड़ की आँखों में अपने प्रतिबिम्ब से बचिये, पब्लिक ओपीनियन से बचिये। वह दूसरी जंजीर है। आदमी जीवन भर यही देखता रहता है कि दूसरे मेरे सम्बन्ध में क्या सोचते हैं। और, दूसरे मेरे सम्बन्ध में ठीक सोचें, इस भांति का अभिनय करता रहता है। ऐसा व्यक्ति अभिनेता ही रह जाता है। ऐसे व्यक्ति के जीवन में चरित्र-जैसी कोई बात नहीं होती। ऐसा व्यक्ति बाहर से अभिमानी हो जाता है, भीतर की आत्मा से उसका कभी सम्बन्ध नहीं होता।

और, तीसरा सूत्र था—'दमन से मुक्ति।' वे, जो अपने चित्त को दबाते हैं, वे अपने ही जीवन को नष्ट कर लेते हैं। जिस बात को दबाते हैं, उसी बात से बंधे रह जाते हैं। अगर धन से छूटने की कोशिश करते हैं, लोभ को दबाते हैं, तो वे फौरन लोभी हो जाते हैं। अगर काम को, सेक्स को दबाते हैं, तो कामुक हो जाते हैं। आदमी जिसको दबाता है, वही हो जाता है; यह कल के सूत्र पर बात हुई थी। आज चौथे सूत्र पर बात करनी है।

इसके पहले कि हम चौथे सूत्र को समझें, दमन के सम्बन्ध में कुछ और बातें समझ लेनी आवश्यक हैं। मनुष्य को पता ही नहीं चलता, कि जन्म के साथ ही दमन शुरू हो जाता है। हमारी सारी शिक्षा, सारी संस्कृति, सारी सभ्यता दमन लाती है। जगह-जगह मनुष्य पर रोक है। समझाया जाता है, क्रोध मत करो!' लेकिन, अगर क्रोध नहीं किया तो क्रोध भीतर सरक जायेगा। तब उसका क्या होगा? अगर क्रोध को पी गये, तो वह खून में मिल जायेगा, हड्डी तक में चिपक जायेगा; तब उस क्रोध का क्या होगा...?

क्रोध को दबा लेने से क्रोध का अन्त नहीं होता। दबा हुआ क्रोध भीतर प्राणों में लिप्त हो जाता है। निकला हुआ क्रोध तो थोड़ी देर का साथी होता है, लेकिन दबा हुआ क्रोध जीवन भर के लिए साथी हो जाता है। क्रोध को दबाया कि पूरा व्यक्तित्व क्रोध से भर जाता है। लेकिन, बच्चों को सिखाया जा रहा है—'क्रोध मत करना।' ऐसी ही सारी बातें सिखायी जाती हैं, लेकिन कोई भी क्रोध से मुक्त नहीं हो पाता।

एक पूर्णिमा की रात में एक छोटे-से गांव में, एक बड़ी अद्भुत घटना घट गई। कुछ जवान लड़कों ने शराबखाने में जाकर शराब पी ली और जब वे शराब के नशे में मदमस्त हो गये और शराबघर से बाहर निकले तो चाँद की बरसती चांदनी में उन्हें यह ख्याल आया कि नदी पर जायँ और नौका विहार करें। रात बड़ी सुन्दर और नशे से भरी हुई थी। वे गीत गाते हुए नदी के किनारे पहुँच गये। नाव वहां बंधी थी। मछुवे नाव बांधकर घर जा चुके थे। रात आधी हो गयी थी। वे एक नाव में सवार हो गये। उन्होंने पतवार उठा ली और नाव खेना शुरू किया। फिर वे रात देर तक नाव खेते रहे। सुबह की ठण्डी हवाओं ने उन्हें सचेत किया। जब उसका नशा कुछ कम हुआ तो उनमें से किसी ने पूछा, "कहां आ गये होंगे अब तक हम। आधी रात तक हमने यात्रा की, न-मालूम कितनी दूर तक निकल आये होंगे। नीचे उतर के कोई देख ले कि किस दिशा में हम चल रहे हैं, कहां पहुँच रहे हैं?"

जो नीचे उतरा था, वह नीचे उतर कर हंसने लगा। उसने कहा, "दोस्तो! तुम भी उतर आओ। हम कहीं भी नहीं पहुँचे हैं। हम वहीं खड़े हैं, जहां रात नाव खड़ी थी।"

वे बहुत हैरान हुए। रात भर उन्होंने पतवार चलायी थी और पहुँचे कहीं भी नहीं थे। नीचे उतर के उन्होंने देखा तो पता चला, नाव की जंजीरें

किनारे से बंधी रह गयी थीं, उन्हें वे खोलना भूल गये थे!

जीवन भी, पूरे जीवन नाव खेने पर, पूरे जीवन पतवार खेने पर कहीं पहुँचता हुआ मालूम नहीं पड़ता। मरते समय आदमी वहीं पाता है स्वयं को, जहां वह जन्मा था। ठीक उसी किनारे पर, जहां आँख खोली थी—आँख बन्द करते समय आदमी पाता है कि वहीं खड़ा है। और तब बड़ी हैरानी होती है कि इतनी जो दौड़-धूप की, उसका क्या हुआ? वह जो प्रण किया था कहीं पहुँचने का, वह जो यात्रा की थी कहीं पहुँचने के लिये, वह सब निष्फल गयी?

मृत्यु के क्षण में आदमी वहीं पाता है अपने को, जहां वह जन्म के क्षण में था। तब सारा जीवन एक सपना मालूम पड़ने लगता है। नाव कहीं बंधी रह गयी किसी किनारे से। हां, कुछ लोग—कुछ सौभाग्यशाली लोग, मरते क्षण वहां पहुँच जाते हैं, जहां जीवन का आकाश है, जहां जीवन का प्रवास है, जहां सत्य है, जहां परमात्मा का मन्दिर है। लेकिन, वहां वे ही लोग पहुँचते हैं, जो किनारे से, खूंटे से जंजीर खोलने की याद रखते हैं।

इन चार दिनों में कुछ जंजीरों की मैंने बात की है। पहले दिन मैंने कहा, शास्त्रों और सिद्धान्तों की जंजीरें बड़ी गहरी हैं। और जो शास्त्रों और सिद्धान्तों से बंधा रह जाता है, वह कभी जीवन के सागर में यात्रा नहीं कर पाता है। जीवन का सागर है—अज्ञात; और, सिद्धान्त और शास्त्र सब हैं—ज्ञात। ज्ञात से अज्ञात की तरफ जाने का कोई भी मार्ग नहीं है, सिवाय ज्ञात को छोड़ने के। जो भी हम जानते हैं, वह ज्ञात है और जो जीवन है, वह अनजान है, अननोन है; वह परिचित नहीं है। तो जो हम जानते हैं, उसके द्वारा उसको नहीं पहचाना जा सकता है, जो हम नहीं जानते हैं। जो ज्ञात है, जो नोन है, उससे अज्ञात को, अननोन को जानने का कोई द्वार नहीं है; सिवाय इसके कि ज्ञात को छोड़ दिया जाये। और ज्ञात को छोड़ते ही अज्ञात के द्वार खुल जाते हैं।

पहले दिन, पहले सूत्र में मैंने यही कहा: छोड़ें शास्त्र को, छोड़ें शब्द को, क्योंकि सब शब्द उधार हैं; बारोड हैं; बासे हैं; मरे हुए हैं। और सब शास्त्र पराये हैं; कोई कृष्ण का है—कोई राम का, कोई बुद्ध का, कोई जीसस का—और कोई मुहम्मद का। जो उन्होंने कहा है, वह उनके लिए सत्य रहा होगा। निश्चित ही, जो उन्होंने कहा है, उसे उन्होंने जाना होगा। लेकिन, उनका

ज्ञान किसी और दूसरे का ज्ञान नहीं बनता है, और नहीं बन सकता है। कृष्ण जो जानते हैं, जानते होंगे। हमारे पास कृष्ण का शब्द ही आता है, कृष्ण का सत्य नहीं।

मैंने सुना है, एक कवि समुद्र की यात्रा पर गया है। जब वह सुबह समुद्र-तट पर पहुँचा, तो बहुत सुन्दर सुबह थी; बहुत सुन्दर प्रभात था। पक्षी गीत गाते थे वृक्षों पर। सूरज की किरणें नाचती थीं लहरों पर। लहरें उछलती थीं सागर की छाती पर। हवाएं ठण्डी थीं और फूलों से सुवास आती थी। वह नाचने लगा उस सुन्दर प्रभात में, और फिर उसे याद आया 'कि उसकी प्रेयसी तो एक अस्पताल में बीमार पड़ी है। काश, वह भी आज यहां होती। वह तो बिस्तर से बंधी है। उसके तो उठने की कोई संभावना नहीं है।'

तो उस कवि को ख्याल आया कि 'क्यों न मैं ऐसा करूं कि समुद्र की इन ताजी हवाओं को, सूरज की इन नाचती हुई किरणों को, लहरों के इस संगीत को, फूलों की इस सुवास को अपनी प्रेयसी के लिये एक पेटी में बन्द करके ले जाऊं। और जाकर उसे कहूं कि देख, कितनी सुन्दर सुबह का एक टुकड़ा मैं तेरे लिये लाया हूं।'

वह गांव गया और एक पेटी खरीद लाया। बहुत सुन्दर पेटी थी। उस पेटी को खोलकर उसने उसमें समुद्र की ठण्डी हवाएं भर लीं, सूरज की नाचती किरणें भर लीं, फूलों की सुगन्ध भर ली। उस पेटी में सुबह का एक टुकड़ा बन्द करके, उसे ताला लगा दिया कि कहीं से वह सुबह बाहर न निकल जाये। और उस पेटी को अपने एक पत्र के साथ उसने अपनी प्रेयसी के पास भेज दिया कि सुबह का एक सुन्दर टुकड़ा, सागर के किनारे का एक जिन्दा टुकड़ा तेरे पास भेजता हूं। नाच उठेगी तू, आनंद से भर जायेगी। ऐसी सुबह मैंने कभी नहीं देखी।

उस प्रेयसी के पास पत्र भी पहुँच गया और पेटी भी पहुँच गयी। पेटी उसने खोली, लेकिन पेटी के भीतर तो कुछ भी नहीं था। न सूरज की किरणें थीं, न सागर की ठण्डी हवाएं थीं; न कोई फूलों की सुवास थी। वह पेटी तो बिलकुल खाली थी। उसके भीतर तो कुछ भी नहीं था।

पेटी पहुँचायी जा सकती है, लेकिन जिस सौंदर्य को सागर के किनारे जाना है, उसे नहीं पहुँचाया जा सकता। जो लोग सत्य के जीवन में सागर के तट पर पहुँच जाते हैं, वे वहां क्या जानते हैं—कहना मुश्किल है; क्योंकि

हमारे सूरज का प्रकाश, जिस प्रकाश को वे जानते हैं, उसके सामने अन्धकार है। जिस सुवास को वे जानते हैं, हमारे किसी फूल में वह सुवास नहीं है। वे जिस आनन्द को जानते हैं, हमारे सुखों में उस आनन्द की एक किरण भी नहीं है। वे जिस जीवन को जानते हैं, उस जीवन का हमें कुछ भी पता नहीं है। बस पेटियों में भर कर वे जो भेजते हैं—गीता में, कुरान में, बाइबिल में—वह हमारे पास आ जाता है। शब्द आ जाते हैं; लेकिन जो उन्होंने भेजा था, वह पीछे छूट जाता है। वह हमारे पास नहीं आता। फिर हम उन पेटियों को सिर पर ढोये हुए घूमते रहते हैं। कोई गीता को लेकर घूमता है—कोई कुरान को, कोई बाइबिल को। और चिल्लाता रहता है कि सत्य मेरे पास है; सत्य मेरी किताब में है।

सत्य किसी भी किताब में न है, न हो सकता है। सत्य किसी शब्द में न है, न हो सकता है। सत्य तो वहाँ है, जहां सब शब्द क्षीण हो जाते हैं, और गिर जाते हैं। जहां चित्त मौन हो जाता है, निर्विचार हो जाता है, वहां है सत्य। न जहां कोई शास्त्र जाता है, न कोई सिद्धान्त। इसलिए जो सिद्धान्त और शास्त्रों की खूंटियों से बंधे हैं, वे कभी जीवन के सागर के तट पर नहीं जा सकेंगे। यह मैंने पहले सूत्र में कहा।

दूसरे सूत्र में मैंने कहा कि जो लोग भीड़ से बंधे हैं और भीड़ की आँखों में देखते रहते हैं—'कि लोग क्या कहते हैं?'—वे लोग असत्य हो जाते हैं, क्योंकि भीड़ असत्य है। भीड़ से ज्यादा असत्य इस पृथ्वी पर और कुछ भी नहीं है। सत्य जब भी अवतरित होता है, तब व्यक्ति के प्राण पर अवतरित होता है। सत्य भीड़ के ऊपर अवतरित नहीं होता। सत्य को पकड़ने के लिए व्यक्ति का प्राण ही वीणा बनता है। सत्य वहीं से झंकृत होता है। भीड़ के पास कोई सत्य नहीं है। भीड़ के पास उधार बातें हैं जो कि असत्य हो गयी हैं। भीड़ के पास किताबें हैं जो कि मर चुकी हैं। भीड़ के पास महात्माओं, तीर्थंकरों और अवतारों के नाम हैं—जो, सिर्फ नाम हैं। उनके पीछे कुछ भी नहीं बचा, सब राख हो गया है।

भीड़ के पास परम्पराएँ हैं; भीड़ के पास यादाश्तें हैं; भीड़ के पास हजार-हजार साल की आदतें हैं; लेकिन भीड़ के पास वह चित्त नहीं, जो मुक्त होकर सत्य को जान लेता है। जब भी कोई उस चित्त को उपलब्ध करता है तो अकेले, व्यक्ति की तरह, उस चित्त को उपलब्ध करना पड़ता है।

इसलिए, जहां-जहां भीड़ है, जहां-जहां भीड़ का आग्रह है—हिन्दुओं की भीड़, मुसलमानों की भीड़, ईसाइयों की भीड़, जैनियों की भीड़, बौद्धों की भीड़—वहां सब असत्य है। हिन्दू भी, मुसलमान भी; ईसाई भी, जैन भी—और कोई भी नाम हों—भीड़ का कोई भी सम्बन्ध सत्य से नहीं है।

लेकिन, हम भीड़ को देखकर ही जीते हैं। हम देखते हैं—'भीड़ क्या कह रही है, भीड़ क्या मान रही है?'

जो आदमी भीड़ को देखकर जीता है, वह अपने बाहर ही भटकता रह जाता है; क्योंकि भीड़ बाहर है। जिस आदमी को भीतर जाना होता है, उसे भीड़ से आँखें हटा लेनी पड़ती हैं। और अपनी तरफ, जहां वह अकेला है उस तरफ, आँखें ले जानी पड़ती हैं। लेकिन, हम सब? हम सब भीड़ से बंधे हैं; भीड़ की खूंटी से बंधे हैं।

मैंने सुना है, एक सम्राट था। उस सम्राट के दरबार में एक आदमी आया और उस आदमी ने आकर कहा कि "महाराज, आपने सारी पृथ्वी जीत ली, लेकिन एक चीज की कमी है आपके पास।" उस सम्राट ने कहा, "कमी? कौन-सी है कमी? जल्दी बताओ; क्योंकि मैं तो बेचैन हुआ जाता हूं। मैं तो सोचता था, सब मैंने जीत लिया।" उस आदमी ने कहा, "आपके पास देवताओं के वस्त्र नहीं हैं। मैं देवताओं के वस्त्र आपके लिए ला सकता हूं।" सम्राट ने कहा, "देवताओं के वस्त्र तो न कभी देखे, न सुने! कैसे लाओगे?" उस आदमी ने कहा, "लाना ऐसे तो बहुत मुश्किल है, क्योंकि देवता आजकल पहले की तरह सरल नहीं रहे। जब से हिन्दुस्तान के सब राजनीतिज्ञ मरकर स्वर्गीय होने लगे हैं, तब से वहां बड़ी बेईमानी और करप्शन सब तरह की शुरू हो गयी है। हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञ सब मरके स्वर्गीय हो जाते हैं। नर्क तो उनमें कोई जाता ही नहीं।

हालांकि कोई भी राजनीतिज्ञ स्वर्ग में नहीं जा सकता; क्योंकि राजनीतिज्ञ जिस दिन स्वर्ग में जाने लगेंगे, उस दिन स्वर्ग भले आदमियों के रहने योग्य जगह न रह जायेगी। लेकिन, वैसे तो सभी स्वर्ग में हैं।

···तो उसने कहा, "जब से वे सब पहुँचने लगे हैं वहां, बड़ी मुश्किल हो गयी है। बहुत रिश्वत चल पड़ी है वहां। लाने भी हों अगर दो-चार वस्त्र तो करोड़ों रुपये खर्च हो जायेंगे।"

सम्राट ने कहा, "करोड़ों रुपये!"

उस आदमी ने कहा, "दिल्ली में सिर्फ जाना हो, तो लाखों खर्च हो जाते हैं, यह तो स्वर्ग है; वहां करोड़ों रुपये खर्च होना स्वाभाविक है। चपरासी भी वहां करोड़ों से नीचे की बात नहीं करते।" राजा ने कहा, "धोखा देने की कोशिश तो नहीं कर रहे हो?"

उस आदमी ने कहा, "सम्राटों को धोखा देना मुश्किल है, क्योंकि उनसे बड़े धोखेबाज जमीन पर दूसरे नहीं हो सकते; उनको क्या धोखा दिया जा सकता है? डाकुओं को क्या लूटा जा सकता है? हत्यारों की क्या हत्या की जा सकती है? मैं मामूली आदमी, आपको क्या धोखा दूंगा? चाहें तो आप पहरा बैठा लें, मुझे भीतर बन्द कर दें। मैं महल के भीतर ही रहूंगा क्योंकि देवताओं के यहां जाने का रास्ता आन्तरिक है, इसलिए बाहर की कोई यात्रा नहीं करनी है। लेकिन करोड़ों रुपये खर्च होंगे और छः महीने लग जायेंगे।"

राजा ने कहा, "छः महीने! मैं तो सोचता था, तू दिन भर में ले आयेगा।" उसने कहा कि "दिन दो-दिन में तो दिल्ली में फाइल नहीं सरकती, तो स्वर्ग में क्या इतना आसान है मामला? कोशिश मैं अपनी करूंगा कि जल्दी ले आऊं।"

राजा ने कहा, "ठीक है।" दरबारियों ने कहा, "यह आदमी धोखेबाज मालूम पड़ता है। देवताओं के वस्त्र कभी सुने हैं आपने?" राजा ने कहा, "लेकिन धोखा देकर यह जायेगा कहां?"

नंगी तलवारों का पहरा लगा दिया है और उस आदमी को महल में बन्द कर दिया है। वह रोज, कभी करोड़, कभी दो करोड़ रुपये मांगने लगा। छः महीने में उसने अरबों रुपये मांग लिये। राजा ने भी सोचा, "कोई फिक्र नहीं है। जायेगा कहां?" ठीक छः महीने पूरे हुए। वह आदमी एक पेटी लेकर महल के बाहर आ गया। उसने सैनिकों से कहा, "मैं कपड़े ले आया हूं, चलें सम्राट के पास।"

तब तो शक की कोई बात न रही। सारी राजधानी महल के द्वार पर इकट्ठी हो गयी। दूर-दूर से लोग देखने आ गये थे। दूर-दूर से राजे-महाराजे बुलाये गये थे, सेनापति बुलाये गये थे, बड़े लोग बुलाये गये थे, धनपति बुलाये गये थे। दरबार ऐसा सजा था, जैसा कभी न सजा होगा। वह आदमी पेटी लेकर जब उपस्थित हुआ, तब राजा की हिम्मत में हिम्मत आयी। अभी तक तो वह डरा ही हुआ था कि अगर बेईमान न हुआ और पागल हुआ, तो भी हम क्या कर सकेंगे!

उसने आकर कह दिया कि नहीं मिले, तो भी हम क्या कर लेंगे? लेकिन वह पेटी लेकर आ गया तो सम्राट को विश्वास हुआ।

उस आदमी ने आकर पेटी रखी और कहा कि "महाराज, वस्त्र ले आया हूं। यहां आ जायें आप, पहने हुये वस्त्र छोड़ दें, और मैं आपको देवताओं के वस्त्र देता हूं, उन्हें पहन लें।"

पगड़ी लेकर राजा की उसने अपनी पेटी के भीतर डाल दी और पेटी के भीतर अपना हाथ डालकर बाहर निकाला। हाथ बिलकुल ही खाली था। उसने कहा, "यह सम्हालिये देवताओं की पगड़ी। दिखायी तो पड़ती है न आपको? क्योंकि देवताओं ने चलते वक्त कहा था कि ये कपड़े उन्हीं को दिखायी पड़ेंगे, जो अपने बाप से पैदा हुए हों।"

पगड़ी तो थी नहीं, दिखायी कहां से पड़ती? लेकिन एकदम-से दिखायी पड़ने लगी। सम्राट ने कहा, "क्यों नहीं दिखायी पड़ती, दिखायी पड़ती है!" मन में सोचा सम्राट ने, "लेकिन मेरा बाप धोखा दे गया है। पगड़ी दिखायी तो नहीं पड़ती है! लेकिन, यह भीतर की बात अब भीतर ही रखनी है।"

दरबारियों ने भी देखा, गर्दनें बहुत ऊपर उठायीं, आँखें तो उनकी भी साथ थीं, लेकिन पगड़ी दिखायी नहीं देती थी। लेकिन सबको दिखायी पड़ने लगी। कोई यह न समझ ले कि उसे पगड़ी दिखायी नहीं पड़ती है, इसलिये सब दरबारी एक-दूसरे के आगे आ-आकर कहने लगे—जोर-जोर से कहने लगे। कहीं धीरे-से कहा और किसी को शक हो गया कि यह आदमी धीरे बोल रहा है, कहीं ऐसा तो नहीं है कि इसको पगड़ी दिखायी नहीं पड़ती है। इसलिए सब दरबारी आगे बढ़कर कहने लगे, "महाराज, ऐसी पगड़ी तो कभी देखी नहीं थी!"

सम्राट ने सोचा कि सब दरबारियों को दिखायी पड़ती है, लेकिन मुझे क्यों नहीं दिखायी पड़ती? "क्या मैं अपने...?"

···फिर हरेक ने यही सोचा कि सबको दिखायी पड़ती है, लेकिन मुझे क्यों ...क्या मैं अपने बाप...?

सम्राट ने पगड़ी पहन ली, कोट पहन लिया, जो नहीं था। कमीज पहन ली, जो नहीं थी। फिर धोती भी निकल गयी। फिर आखिरी वस्त्र निकलने की नौबत आ गयी। तब राजा घबड़ाया कि कहीं कुछ धोखा तो नहीं है? सम्राट डरने लगा तब उस आदमी ने कहा, "डरिये मत महाराज, नहीं तो लोगों को शक हो जायेगा। जल्दी से आखिरी वस्त्र निकाल दीजिये...!"

भीड़ की यात्रा बड़ी खतरनाक है। पहले कदम पर कोई रुक जाये तो रुक जाये, बाद में रुकना बहुत मुश्किल हो जाता है।

···अब सम्राट ने भी सोचा "इतनी दूर चले ही आये, आधे नंगे हो ही गये, अब जो होगा, होगा।" सम्राट ने हिम्मत करके आखिरी कपड़ा भी निकाल दिया। लेकिन सारा दरबार कह रहा था, "महाराज धन्य है, अद्भुत वस्त्र हैं, दिव्य वस्त्र हैं। इसलिये सम्राट को हिम्मत भी थी कि कोई फिक्र नहीं, नंगापन तो सिर्फ मुझे ही पता चल रहा है। तो अपना नंगापन अपने को पता रहता ही है। उसमें तो कोई हर्जा भी नहीं है ज्यादा। लेकिन उस बेईमान आदमी ने, जो यह वस्त्र लाया था देवताओं के...।

और देवताओं से वस्त्र लाने वाले...और देवताओं की खबर लाने वाले... देवताओं तक पहुँचानेवाले लोग—सब बेईमान होते हैं।... सब। इधर आदमी तक पहुँचना मुश्किल है, देवताओं तक पहुँचना आसान है। आदमी को समझना मुश्किल है, और स्वर्ग के नक्शे बनाये हुए बैठे हैं! बड़ोदा की ज्यॉग्रफि का जिनको पता नहीं, वे स्वर्ग और नर्क के नक्शे बनाये बैठे हैं!

···उस आदमी ने कहा, "महाराज, देवताओं ने चलते वक्त कहा था, पहली दफे पृथ्वी पर जा रहे हैं ये वस्त्र, इनकी शोभा-यात्रा नगर में निकलनी बहुत जरूरी है। रथ तैयार है। अब आप आकर रथ पर सवार हो जाइए। लाखों-लाखों जन भीड़ लगाये हुए हैं। उनकी आँखें तरस रही हैं इन वस्त्रों को देखने के लिए।"

राजा ने कहा, "क्या कहा? अब तक तो महल के भीतर थे, जहां अपने ही लोग थे। अब, महल के बाहर, सड़कों पर भी जाना होगा?" लेकिन, उस आदमी ने धीरे से कहा, "घबड़ाइए मत, जिस तरकीब से यहां सबको वस्त्र दिखायी पड़ रहे हैं, उसी तरकीब से वहां भी सबको दिखायी पड़ेंगे। आपके रथ के आगे यह डुगडुगी पीटी जायेगी सारे नगर में कि यह वस्त्र उसी को दिखायी पड़ेंगे, जो अपने बाप से पैदा हुआ है। आप घबड़ाइए मत। अब जो हो गया, हो गया। अब चलिये।"

राजा समझ तो गया कि वह नंगा है और किसी को वस्त्र दिखायी नहीं पड़ रहे हैं, लेकिन अब कोई भी अर्थ न था। जाकर बैठ गया वह सिंहासन पर, रथ पर। स्वर्ण-सिंहासन रथ पर लगा था। नंगा राजा, बैठा था स्वर्ण-सिंहासन पर...।

स्वर्ण-सिंहासनों पर नंगे लोग ही बैठते हैं।

···शोभा-यात्रा निकली। लाखों लोगों की भीड़ थी। और नगर के लाखों लोगों को एकदम-से वस्त्र दिखायी पड़ने लगे थे...!

वही लोग जो महल के भीतर थे, वही महल के बाहर भी हैं। वही आदमी, वही भीड़ वाला आदमी।

···सब वस्त्रों की प्रशंसा करने लगे। कौन झंझट में पड़े। जब सारी भीड़ को दिखायी पड़ता हो तो एक व्यक्ति अपने को कैसे इन्कार करे; कैसे कहे कि मुझे दिखायी नहीं पड़ता। इतना बल जुटाने के लिए बड़ी आत्मा चाहिए। इतना बल जुटाने के लिए बड़ा धार्मिक व्यक्ति चाहिए। इतना बल जुटाने के लिए परमात्मा की आवाज चाहिए। कौन इतना बल जुटाये? इतनी बड़ी भीड़! फिर मन में यह प्रश्न आता है कि जब इतने लोग कहते हैं, तो ठीक ही कहते होंगे। इतने लोग गलत क्यों कहेंगे? लेकिन, कोई भी यह नहीं सोचता कि ये इतने लोग भी इकट्ठे नहीं है, ये भी एक-एक आदमी हैं, अपने लिए—'मेरे-ही-जैसा'। जैसा मैं कमजोर हूं, वैसा ही यह भी कमजोर है। यह भी भीड़ से डर रहा है, मैं भी भीड़ से डरता हूं...।

जिससे हम डर रहे हैं, वह कहीं है ही नहीं। एक-एक आदमी का समूह खड़ा हुआ है, और सब भीड़ से डर रहे हैं।

···लोग अपने बच्चों को घर ही छोड़ आये थे; लाये नहीं थे भीड़ में। क्योंकि बच्चे का क्या भरोसा, कोई बच्चा कह दे कि राजा नंगा है...तो?

बच्चों का क्या विश्वास? बच्चों को बिगाड़ने में वक्त लग जाता है। स्कूल, कॉलेज, युनिवर्सिटी—सब जुटे हुए हैं, फिर भी मुश्किल से बिगाड़ पाते हैं। एकदम आसान नहीं बिगाड़ देना।

···छोटे-छोटे बच्चों को अपने साथ कोई नहीं लाया था। लेकिन कुछ बच्चे जिद्दी होते हैं। और कुछ बच्चे ऐसे होते हैं, जिनकी माताओं की वजह से पिताओं को उनसे डरना पड़ता है। उनको लाना पड़ा। वे कन्धे पर सवार होकर आ गये। एक बच्चे ने जोर से कहा, "अरे! राजा नंगा है!"

उसके बाप ने कहा, "चुप, नादान! अभी तुझे अनुभव नहीं है, इसलिए तुझे नंगा दिखायी पड़ता है। ये बातें बड़े गहरे अनुभव का हैं। अनुभवियों को दिखायी पड़ती हैं। जब उम्र तेरी बढ़ेगी, तो तुझको भी दिखायी पड़ने लगेंगी।

यह उम्र से आता है ज्ञान। उम्र के बिना दुनिया में कोई ज्ञान कभी नहीं आता...।"

उम्र के भरोसे मत बैठे रहना। उम्र से बेईमानी आती है, चालाकी आती है, कनिंगनेस आती है; उम्र से ज्ञान कभी नहीं होता। लेकिन, सभी चालाक लोग यही कहते हैं कि उम्र से ज्ञान होता है।

···उस बच्चे ने पूछा, "आपको दिखायी पड़ रहे हैं वस्त्र?"

"हां, मुझे दिखायी पड़ रहे हैं"—उसके पिता ने कहा। "बिलकुल दिखायी पड़ रहे हैं। हम अपने ही बाप से पैदा हुए हैं। ऐसा कैसे हो सकता है कि हमको दिखायी न पड़ें। और, तुम अभी बच्चे हो—नासमझ हो, भोले हो; अभी तुम्हें समझ कहां है!"

जिस बच्चे को सत्य दिखायी पड़ा था, उसे भीड़ के भय का कोई पता नहीं था; इसीलिए दिखायी पड़ा था। वह भी बड़ा होगा, तो भीड़ से भयभीत हो जायेगा। तब उसे भी वस्त्र दिखायी पड़ने लग जायेंगे।

यह भीड़ डराये हुए है चारों तरफ से एक-एक आदमी को। इसलिए जीसस ने कहा है:

···एक बाजार में वे खड़े थे। कुछ लोग उनसे पूछने लगे कि तुम्हारे स्वर्ग के राज्य में, तुम्हारे परमात्मा के दर्शन को कौन उपलब्ध हो सकता है? तो जीसस ने चारों तरफ नजर दौड़ायी, और एक छोटे-से बच्चे को उठाकर ऊपर कर लिया, और कहा कि 'जो इस बच्चे की तरह है'।

क्या मतलब रहा होगा...? क्या कद छोटे होने से ईश्वर के राज्य में चले जाइयेगा...? कि उम्र कम होगी तो ईश्वर के राज्य में चले जाइएगा...! या बच्चे मर जायेंगे तब ईश्वर के राज्य में चले जायेंगे...?

'जो बच्चों की तरह हैं'—इसका मतलब है, जो भीड़ से भयभीत नहीं हैं। जो शुद्ध हैं और साफ हैं। जो दिखता है, वही कहते हैं कि दिखता है। जो नहीं दिखता, कहते हैं कि नहीं दिखता। जो झूठ को मान लेने को राजी नहीं हैं। जो बच्चों की तरह हो गये हैं। बच्चे नहीं हो गये हैं, बच्चों की तरह हो गये हैं। बच्चों की तरह होने का क्या मतलब है...?

बच्चे अकेले हैं, बच्चे इन्डिविजुअल हैं। बच्चों को भीड़ से कोई मतलब नहीं है। अभी भीड़ की उन्हें फिक्र नहीं है। अभी भीड़ का उन्हें पता भी नहीं है

कि भीड़ भी है।

भीड़ बड़ी अद्‌भुत् चीज है। एक अनजानी ताकत जकड़े हुए है आदमी को चारों तरफ से। इसलिए दूसरा सूत्र मैंने कहा, अगर तुम्हें जीवन के सत्य की तरफ जाना हो, तो भीड़ की खूंटी से मुक्त हो जाना।

इसका यह मतलब नहीं कि आप भीड़ से भाग जायें। भागेंगे कहां, भीड़ सब जगह है। कहां भागेंगे? जहां जायेंगे वहीं भीड़ है। और अभी तो थोड़ी-बहुत पहाड़ियां बच भी गयी हैं, जहां भागकर जा भी सकते हैं, लेकिन कुछ ही दिनों में पहाड़ियां भी नहीं बचेंगी। वैज्ञानिक कहते हैं कि सौ वर्षों में अगर भारत-जैसे देश बच्चों को पैदा करने के अपने महान कार्य में संलग्न रहे, तो दुनिया में कुहनी हिलाने की जगह भी नहीं रह जाने वाली है। तब हमें सभा करने की जरूरत नहीं रहेगी। कहीं भी खड़े हो जाइये और सभा हो जायेगी।

कहां भागियेगा भीड़ से...? जंगलों में, पहाड़ों में कोई खटपट नहीं है..? भीड़ वहां भी बहुत सूक्ष्म रूप में पीछा करती है। एक आदमी साधु हो जाता है, भाग जाता है जंगल में। जंगल में बैठा है, उससे पूछिये—'आप कौन हैं?' वह कहता है—'मैं हिन्दू हूं!'

भीड़ पीछा कर रही है। अभी भी तुम अपने को हिन्दू कहते हो! अभी तक आदमी नहीं हुए?

आदमी होना बहुत मुश्किल है, हिन्दू होना बहुत आसान है। एक आदमी साधु हो जाता है, वह कहता है—'मैं जैन हूं!' अब तुमने समाज को छोड़ दिया है, तो अब तुम जैन कैसे हो? यह जैन-वैन होना तो समाज ने सिखाया था।

साधु भी—हिन्दू, जैन और मुसलमान हैं, तो फिर असाधुओं का क्या हिसाब रखना। गांधी-जैसे अच्छे आदमी भी इस भ्रम से मुक्त नहीं हो सके कि मैं हिन्दू हूं। चिल्लाये चले जाते हैं कि मैं हिन्दू हूं। तो साधारण लोगों की क्या हैसियत है। गांधी-जैसा अच्छा आदमी भी हिम्मत नहीं जुटा पाता कि कहे कि मैं आदमी हूं, बस; और कोई विशेषण नहीं लगाऊंगा। अगर अकेले गांधी ने भी हिम्मत जुटा ली होती, और यह कहा होता कि मैं सिर्फ आदमी हूं, तो जिन्ना की जान निकल गयी होती। लेकिन गांधी के हिन्दू होने ने जिन्ना की जान न निकलने दी।

हिन्दुस्तान का बंटवारा हुआ गांधी के हिन्दू होने की वजह से; अन्यथा हिन्दुस्तान कभी नहीं बंटता। लेकिन ख्याल में नहीं आता हमें यह, कि इतनी छोटी-सी बात कितने बड़े परिणाम ला सकती है। गांधी का हिन्दू होना संदिग्ध करता रहा मुसलमान के मन को। गांधी का आश्रम, गांधी के हिन्दू ढंग, गांधी की प्रार्थना, पूजा, पत्र—सब यह वहम पैदा करते रहे कि वे हिन्दू महात्मा हैं। और हिन्दू महात्मा से, हिन्दू भीड़ से सावधान होना जरूरी है मुसलमान को। दूसरी भीड़ सदा सावधान होती है; क्योंकि एक भीड़ से दूसरी भीड़ को डर है; एक दुकान को दूसरी दुकान से डर है। जिन्ना का मुसलमान होना खत्म हो जाता, पर गांधी का हिन्दू होना ही खत्म नहीं हो सका। और जिन्ना से हम आशा नहीं करते हैं कि उसका खत्म हो, वह आदमी साधारण है; गांधी से हम आशा कर सकते हैं। लेकिन गांधी का ही खत्म नहीं हुआ, तो जिन्ना का कैसे खत्म होगा!

भीड़ पीछा करती है; भीड़ बहुत सचेत, बहुत सूक्ष्म रास्ते से पीछा करती है...?

बर्टेन्ड रसेल ने कहीं कहा है कि मैंने बहुत पढ़-लिखकर, बहुत सोच समझकर पाया कि बुद्ध से ज्यादा अदभुत् आदमी दूसरा नहीं हुआ पृथ्वी पर। लेकिन जब भी मैं यह सोचता हूं कि बुद्ध सबसे महान हैं, तभी मेरे भीतर एक बेचैनी होने लगती है और कोई कहता है कि नहीं, बुद्ध क्राइस्ट से ज्यादा महान नहीं हो सकते!

···भीड़ पीछा करती है। वह भीतर बैठी है। वह बचपन से जो सिखा देती है, जो कण्डीशनिंग कर देती है, जैसा चित्त को संस्कारित करती है, फिर वह जीवन भर पीछा करता है; मरते दम तक पीछा करता है।

एक सज्जन हैं। बहुत विचारशील हैं। उनका नाम नहीं लूंगा; क्योंकि किसी का नाम लेना इस युग में ऐसा खतरनाक हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं। किसी का नाम नहीं लिया जा सकता। अन्धेरे में बात करनी पड़ती है। वे बड़े विचारक हैं। वे मुझसे कहते थे, "मेरा सब छूट गया; जप, तप, पूजा, पाठ—मैंने सब छोड़ दिया है। मैं सबसे मुक्त हो गया हूं।"

मैंने कहा—"इतना आसान नहीं है मामला। यह मुक्त हो पाना इतना आसान नहीं है। क्योंकि जब आप कहते हैं कि मैं मुक्त हो गया हूं, तभी मैं आपकी आंख में झांकता हूं और मुझे लगता है कि आप मुक्त नहीं हुए। अगर

मुक्त हो गये होते तो—'मुक्त हो गया हूं' यह ख्याल भी छूट गया होता।"

उन्होंने कहा—"नहीं, नहीं, मैं मुक्त हो गया हूं।" मैंने कहा, "जितने जोर से आप कहेंगे मुझे, मेरा शक उतना ही बढ़ता जायेगा। वक्त आने दीजिये, पता चल जायेगा।" फिर जब उनको हार्ट अटैक हुआ तो मैं उन्हें देखने गया। आंख बन्द किये वे कुछ बेहोश-से पड़े थे और राम-राम, राम-राम का जाप चल रहा था। मैंने उनको हिलाया और कहा, "ये क्या कर रहे हैं?"

उन्होंने कहा, "मैं बड़ी हैरानी में पड़ गया हूं। जिस क्षण हार्ट अटैक हुआ, ऐसा लगा कि मर जाऊंगा और जिस पूजा-पाठ को सदा के लिए छोड़ दिया था, वह एकदम-से चलना शुरू हो गया! अब मैं रोकना भी चाहता हूं तो नहीं रुकता है; भीतर चले ही जा रहा है जोर से—राम-राम, राम-राम। मैं सोचता था सब छूट गया है। लेकिन, शायद आप ठीक कहते थे, 'छोड़ना बहुत मुश्किल है।'

बहुत गहरे में जड़ें रहती हैं भीड़ की। वह जो सिखा देती है, वह भीतर बैठा रहता है। वह राम-राम का जाप भीतर गहरे-से-गहरे चला गया था। अब गांधी जी कितना कहते थे—'अल्लाह ईश्वर तेरे नाम।' लेकिन जब गोली लगी, तब अल्लाह का नाम याद नहीं आया। तब हे राम! ही याद आया, अल्लाह का नाम याद नहीं आया। गोली लगी तो याद आया—'हे राम!'

वह हिन्दू भीतर बैठा है। वह राम आत्मा में भीतर गहरे से गहरा घुस गया है। वह जब गोली लगी, सब भूल गया है 'अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम।' निकला, 'हे राम!' 'हे अल्लाह!' निकलता, तो शायद गांधी... लेकिन बड़ा मुश्किल था, नहीं हो सका। वह असम्भव था, वह हो नहीं सका।

गहरे में भीड़ घुस जाती है आदमी के। भीड़ से बचने का मतलब यह नहीं है कि जंगल चले जाना। भीड़ से बचने का मतलब है—अपने भीतर खोजना। और जहां-जहां भीड़ के चिन्ह मिलें, उन्हें अलग करते जाना और कोशिश जारी रखना कि व्यक्ति का आविर्भाव हो जाये। भीड़ से मुक्त होकर व्यक्ति ऊपर उठ आये; भीड़ छूट जाये, भीतर—अन्तस में, चित्त में।

जो आदमी अपने चित्त की वृत्तियों को दबाता है, वह जिन वृत्तियों को दबाता है, उन्हीं से बंध जाता है। जिससे बंधना हो, उसी से लड़ना शुरू कर देना। दोस्त से उतना गहरा बन्धन नहीं होता है, जितना दुश्मन से होता है, दोस्त की तो कभी-कभी याद आती है; सच तो यह है याद कभी आती ही

नहीं। जब मिलता है, तभी कहते हैं कि बड़ी याद आती है। लेकिन, दुश्मन की चौबीस घण्टे याद बनी रहती है। रात सो जाओ, तब भी वह साथ सोता है। सुबह उठो, तो उठने के साथ उठता है। जितनी गहरी दुश्मनी हो, उतना गहरा साथ हो जाता है।

इसलिए दोस्त कोई भी चुन लेना, दुश्मन थोड़ा सोच-विचार से चुनना चाहिए। क्योंकि उसके चौबीस घण्टे साथ रहना पड़ेगा। दोस्त कोई भी चल जाता है; ऐरा-गैरा—क, ख, ग—कोई भी चल जाता है; लेकिन, दुश्मन? दुश्मन के साथ हमेशा रहना पड़ता है।

और तीसरे सूत्र में मैंने कहा कि दमन भूल कर भी मत करना; क्योंकि दमन अच्छी चीजों का तो कोई करता नहीं है, दमन करता है बुरी चीजों का। और जिनका दमन करता है, जिनसे लड़ता है, उन्हीं के साथ उसका गठबन्धन हो जाता है, उन्हीं के साथ फेरा पड़ जाता है। जिस चीज को हम दबाते हैं, उसी से जकड़ जाते हैं।

मैंने सुना है, एक होटल में एक रात के लिये एक आदमी ठहरने के लिये आया। लेकिन होटल के मैनेजर ने उसे कहा, "यहाँ जगह नहीं है, आप कहीं और चले जायें। एक ही कमरा खाली है और वह हम देना नहीं चाहते। ऊपर का कमरा खाली है और नीचे के कमरे में एक सज्जन ठहरे हुए हैं। अगर जरा भी खड़बड़ हो जाये, आवाज हो जाये, या कोई जोर से चल दे तो झगड़ा हो जाता है। पहले भी ऐसा हो चुका है। तो जब से पिछले मेहमान ने कमरा खाली किया है, हमने तय किया है, कि अब ऊपर का कमरा खाली ही रखेंगे, जब तक कि नीचे के सज्जन विदा नहीं हो जाते...।"

कुछ सज्जन ऐसे होते हैं, जिनके आने की राह देखनी पड़ती है और कुछ ऐसे होते हैं, जिनके जाने की भी राह देखनी होती है। और दूसरी तरह के ही सज्जन ज्यादा होते हैं; पहली तरह के सज्जन तो बहुत कम ही होते हैं, जिनके आने की राह देखनी पड़ती है।

...उस मैनेजर ने कहा, "क्षमा करिये, हम उनके जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। जब वे चले जायें, तब आप आइए।" उस आदमी ने कहा, "आप हैरान न हों, घबड़ाएं न, मैं सिर्फ दो-चार घण्टे रात सोऊंगा। दिन भर बाजार में काम करूंगा, रात दो बजे लौटूंगा, और सो जाऊंगा। सुबह छः बजे उठकर मुझे गाड़ी पकड़नी है। नींद में उन सज्जन से कोई झगड़ा होगा, इसकी

आशा नहीं है। नींद में चलने की मेरी आदत भी नहीं है। कोई गड़बड़ नहीं होगी, मैं आराम से सो जाऊंगा, आप फिक्र न करें।"

मैनेजर मान गया। वह आदमी दो बजे रात लौटा, थका-मांदा—दिन भर के काम के बाद। बिस्तर पर बैठकर उसने जूता खोलकर नीचे पटका। तब उसे ख्याल आया, 'कहीं नीचे के मेहमान की जूते की आवाज से नींद न खुल जाये?' दूसरा जूता धीरे से निकालकर रखकर वह सो गया। घण्टे भर बाद नीचे के सज्जन ने दस्तक दी: "महाशय, दरवाजा खोलिये!" वह बहुत हैरान हुआ कि 'घण्टे भर तो मेरी नींद भी हो चुकी, अब क्या गलती हो गयी होगी?' दरवाजा उसने खोला डरते हुये। उस सज्जन ने पूछा कि "दूसरा जूता कहां है? मुझे बहुत मुश्किल में डाल दिया है। जब पहला जूता गिरा, तो मैं समझा कि ऊपर के महाशय आ गये हैं। फिर दूसरा जूता गिरा ही नहीं! तब से मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं, कि दूसरा जूता अब गिरा, अब गिरा। फिर मैंने अपने मन को समझाया कि मुझे किसी के जूते से क्या लेना-देना? हटाओ, कुछ भी हो, मुझे क्या मतलब? लेकिन, जितना मैंने हटाने की कोशिश की, उतना ही दूसरा जूता मेरी आँखों में घूमने लगा। आँख बन्द करता हूं तो जूता दिखाई पड़ता है, आँख खोलता हूं तो जूता दिखाई पड़ता है! बड़ी बेचैनी हो गयी है। नींद बड़ी मुश्किल हो गयी है। जूता भीतर धक्के देने लगा है। बहुत समझाया मन को कि तू भी कैसा पागल है! किसी के जूते से अपने को क्या मतलब है; चाहे एक जूता पहनकर सोया हो, चाहे एक भी न पहनकर सोया हो। लेकिन, जितना मैंने मन को समझाया, दबाया, लड़ा—उतना ही वह जूता बड़ा होता गया, और तेजी से मन में घूमने लगा...!"

अपनी-अपनी खोपड़ी की तलाश अगर आदमी करे, तो पायेगा कि दूसरे के जूते वहां घूम रहे हैं, जिनसे कुछ लेना-देना नहीं है।

...उन सज्जन ने कहा, "क्षमा कीजिये! इसीलिए मैं पूछने आया हूं, ताकि पता चल जाये तो मैं सो जाऊँ शान्ति से, और झगड़ा बन्द हो जाये।"

जो उस आदमी के साथ हुआ, वही सबके साथ होता है। सप्रेसिव माइण्ड, दमन करने वाला चित्त हमेशा व्यर्थ की बातों में उलझ जाता है। सेक्स को दबाओ—और चौबीस घण्टे सेक्स का जूता सिर पर घूमने लगेगा। क्रोध को दबाओ—और चौबीस घण्टे क्रोध प्राणों में घुसकर चक्कर काटने लगेगा। और एक तरफ से दबाओ, तो दूसरी तरफ से निकलने की चेष्टा शुरू हो जायेगी, क्योंकि

प्रत्येक व्यक्ति में ऊर्जा है, एनर्जी है। आप दबाओगे एनर्जी को तो वह कहीं से निकलेगी? एक झरने को आप इधर से रोक दो, तो वह दूसरी तरफ से फूट कर बहने लगेगा। उधर से दबाओ, तो तीसरी तरफ से बहने लगेगा।

एक आदमी एक दफ्तर में नौकरी करता था। एक दिन उसके मालिक ने उसे कुछ बेहूदी बातें कह दीं...।

और मालिक तो बेहूदी बातें कहते हैं; नहीं तो मालिक होने का मजा ही खत्म हो जाये। मजा क्या है मालिक होने में...? किसी से बेहूदी बातें कह सकते हो, यही मजा है। और नौकर यह भी नहीं कह सकता कि आप बेहूदी बातें कर रहे हैं। और फिर मालिक बेहूदी बातें कहे या न कहे, नौकर को मालिक की सब बातें बेहूदी मालूम पड़ती हैं। नौकर होना भी बेहूदगी है; क्योंकि मालिक जो भी कहे, नौकर को बेहूदगी ही मालूम पड़ती है। मालिक जब जोर से बोलता है, क्रोध की बातें कहता है, तो भी नौकर को खड़े होकर मुस्कराना पड़ता है। भीतर आग लगी होती है कि गर्दन दबा दें...।

ऐसा कौन नौकर होगा, जिसको मालिक की गर्दन दबाने का ख्याल न आता हो? आता है, जरूर आता है। आना भी चाहिए, नहीं तो दुनिया बदलेगी भी नही!

...मगर ऊपर से ओठों पर मुस्कराहट फैला लेगा, धन्यवाद देने लगेगा, कहेगा—"बड़ी अच्छी बातें कह रहे हैं। बड़े वेद वचन बोल रहे हैं। बड़ी वाणी आपकी मधुर है। उपनिषद् के ऋषि भी क्या बोलते होंगे, ऐसी बातें! धन्यभाग मेरे कि आपके अमृत-वचन मेरे ऊपर गिरे!"

भीतर क्रोध की आग जल रही है। दबा लेना अपने क्रोध को। लेकिन क्रोध को दबाकर कितनी देर चल सकते हैं। साइकिल चलायेगा तो पैडल जोर से मारने लगेगा। कार ड्राइव करेगा तो एकदम-से स्पीड छोड़ देगा। वह जो क्रोध दबाया है, वह सब तरफ से निकलने की कोशिश करेगा।

अमेरिका के मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर आदमी को क्रोध की कोई समझ पैदा हो सके, तो अमेरिका के एक्सिडेन्ट पचास प्रतिशत कम हो जायेंगे। वह जो एक्सिडेन्ट हो रहे हैं, वे सड़क की वजह से कम हो रहे हैं, दिमाग की वजह से ज्यादा हो रहे हैं।

आपको पता है, जब आप क्रोध में साइकिल चलाते हैं, तो किस तरह से

चलाते हैं? एकदम से जैसे आपको पर लग जाते हैं ! फिर कोई नहीं दिखता सामने। ऐसा मालूम होता है—रास्ता खाली है, एकदम। और सामने कोई आ जाये तो ऐसा मन होता है कि टकरा दूं जोर से; क्योंकि भीतर टकराहट चल रही होती है।

क्रोध से भरा हुआ आदमी तेजी से साइकिल चलाता हुआ घर पहुँचेगा। रास्ते में दो-चार बार बचेगा टकराने से। क्रोध और भारी हो जायेगा। और जाकर घर वह प्रतीक्षा करेगा कि कोई मौका मिल जाये और पत्नी की गर्दन दबा दे...।

पत्नी बड़ी सरल चीज है। वह है ही इसलिए कि आप घर आइए और उसकी गर्दन दबाइए। उसका मतलब क्या है; उसका उपयोग क्या है और? उसका असली उपयोग यही है कि जिन्दगी भर जो व्यथा आपके ऊपर गुजरे, वह जाकर पत्नी पर रिलीज़ कीजिये।

...घर पहुँचते ही सब गड़बड़ दिखायी पड़ने लगेगी। पत्नी, जिसको कल रात ही आपने कहा था कि 'तू बड़ी सुन्दर है', एकदम-से मालूम पड़ेगी कि यह सूर्पणखा कहां से आ रही है? सब प्रेम खत्म हो जायेगा। फिल्म की अभिनेत्रियां याद आयेंगी कि सौंदर्य इसको कहते हैं, और यह औरत...?

...रोटी जली हुई मालूम पड़ेगी। सब्जी में नमक नहीं मालूम पड़ेगा। सब अस्त-व्यस्त मालूम पड़ेगा। घर अस्त-व्यस्त, घूमता हुआ मालूम पड़ेगा। पिल पड़ेंगे उस पर। कल भी रोटी ऐसी ही थी; क्योंकि कल भी पत्नी वही थी। कल भी पत्नी वही थी, जो आज है; लेकिन आज सब बदला हुआ मालूम पड़ेगा। वह जो भीतर दबाया है, वह निकलने के लिए मार्ग खोज रहा है।

और, ध्यान रहे! जैसे पानी ऊपर की तरफ नहीं चढ़ता, ऐसे क्रोध भी ऊपर की तरफ नहीं चढ़ता। पानी भी नीचे की तरफ उतरता है, क्रोध भी नीचे की तरफ उतरता है। कमजोर की तरफ उतरता है, ताकतवर की तरफ नहीं उतरता। मालिक की तरफ नहीं चढ़ सकता है, क्रोध। चढ़ाना हो तो बड़ा पम्प लगाना जरूरी है। कम्युनिज्म वगैरह के पम्प लगाओ, तब चढ़ सकता है मालिक की तरफ; नहीं तो नहीं। पत्नियों की तरफ एकदम उतर जाता है और पत्नी कुछ भी नहीं कर सकती, क्योंकि पति परमात्मा है। ये पति यह भी समझा रहे हैं पत्नियों को कि हम परमात्मा है।

बड़े मजे की बातें दुनियां में चल रही हैं! कोई स्त्री यह नहीं कह रही है

कि महाशय, आप और परमात्मा! आप ही परमात्मा हैं तो परमात्मा पर भी शक पैदा हो रहा है। और आप भी परमात्मा हैं? आपकी इज्जत नहीं बढ़ती है परमात्मा होने से, परमात्मा की इज्जत घटती है आपके होने से। कृपा करके, परमात्मा को बाइज्जत जीने दो, आप परमात्मा न बनो; लेकिन कोई स्त्री नहीं कहेगी !

स्त्री के पास व्यर्थ की बकवास करने के लिए बहुत ताकत है, लेकिन बुद्धिमत्ता की एक बात स्त्री को नहीं करनी है। स्त्री, पति-परमात्मा पर क्रोध नहीं करेगी। उसको भी राह देखनी पड़ेगी। आग जो लगी है उसके भीतर, वह राह देखेगी। उसे बच्चे का रास्ता देखना पड़ेगा। कि आओ बेटा, आज तुम्हारा सुधार किया जाये। बेटे बेचारे को कुछ पता भी नहीं है। वह अपना नाचता हुआ, अपना बस्ता लिये हुए स्कूल से चला आ रहा है। उसको पता ही नहीं है कि क्या होने जा रहा है। उधर मां तैयार बैठी है। प्रतीक्षा कर रही है, सुधार करने को...।

जितने लोग सुधार करने की प्रतीक्षा करते हैं—ध्यान रखना, उनके भीतर कोई क्रोध है, जिसकी वजह से उनके भीतर सुधार की आयोजना चलती है। जिनके अपने बेटे नहीं होते हैं, वे अनाथालय खोल लेते हैं; जिनका अपना घर नहीं होता है, वे आश्रम बना लेते हैं; लेकिन सुधार करते हैं! जिनको कोई नहीं मिलता, वे कोई भी तरकीब निकाल कर समाज-सुधार करने में लग जाते हैं।

भीतर क्रोध है, भीतर आग है; किसी को ताड़ने, मरोड़ने, बदलने की इच्छा है।

...यह बच्चा आते ही बक जायेगा। कल भी वह ऐसे ही आया था नाचता हुआ, लेकिन आज उसका नाच, नाचना उपद्रव मालूम पड़ेगा...।

हमें वही दिखाई पड़ता है, जो हमारे भीतर है। हमारा सब देखना प्रोजेक्शन है।

...आज उसके कपड़े गन्दे मालूम पड़ेंगे। वह रोज ऐसे ही आता है। बच्चे कपड़े गन्दे नहीं करेंगे तो क्या बूढ़े कपड़े गन्दे करेंगे? बच्चे तो कपड़े गन्दे करेंगे ही। क्योंकि, बच्चों का कपड़ों का पता भी नहीं है। कपड़ों का पता रखने के लिए भी आदमी को बहुत चालाक होने की जरूरत है। बच्चों को कहां होश?

··· कपड़े फट गये हैं?... किताब फट गयी है?... स्लेट फूट गयी है?... इसलिये, आज बच्चे का सुधार किया जायेगा। लेकिन मां को पता भी नहीं चलेगा कि वह बच्चे की शकल में पति को चांटे मार रही है; कि ये चांटे पति को पड़ रहे हैं।

और बच्चे भलीभांति जानते हैं कि उनकी पिटायी कब होती है! जब मां-बाप का आपस में झगड़ा चलता है, तब। जब मां-बाप लड़ते हैं, तब बच्चे पिटते हैं। इसलिए, जिनके बच्चे नहीं होते हैं, उनके घर में बड़ी मुश्किल हो जाती है; क्योंकि पिटने के लिए कोई कामन मेन नहीं होता; कि किसको पीटो! अगर ऐसा न हो तो प्लेटें टूट जाती हैं, रेडियो गिर जाता है; दूसरे उपाय खोजने पड़ते हैं। आपको मालूम होगा, प्लेट कब टूटती है? और पत्नियों को भी मालूम रहता है कि अब एकदम हाथ से प्लेटें छूटने लगती हैं।

···लेकिन, बच्चा पिटेगा। बच्चा क्या कर सकता है? वह मां के प्रति क्रोध कैसे करे? अगर मां के प्रति क्रोध करना है तो जरा प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। पन्द्रह-बीस साल बहुत लम्बी प्रतीक्षा है। जब एक औरत और आ जाये पीछे ताकत देने को; क्योंकि किसी भी औरत से लड़ना हो तो एक औरत का साथ जरूरी है। नहीं तो हार निश्चित है। औरत से औरत ही लड़ सकती है, आदमी नहीं लड़ सकता। राह देखनी पड़ेगी। बहुत लम्बा वक्त है। वक्त देखना पड़ेगा कि कब मां बूढ़ी हो जाये; क्योंकि तब पांसा बदल जायेगा। अभी मां ताकतवर है, बच्चा कमजोर है। जब बच्चा ताकतवर होगा, मां कमजोर हो जायेगी, तब ...।

वह जो बूढ़े मां-बाप को बच्चे सताते हैं; और जब तक मां-बाप बच्चों को सताते रहेंगे, तब तक बूढ़े मां-बापों को सावधान रहना चाहिए, कि उनके बच्चे उनको सतायेंगे।

···यह तो बहुत लम्बी बात है। इतनी देर तक प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। क्रोध इतनी देर रुकने के लिए राजी नहीं हो सकता। तो बच्चा क्या करेगा? ...जायेगा, अपनी गुड़ी या की टांग तोड़ देगा!... किताब फाड़ देगा! ...कुछ करेगा। जो भी वह कर सकता है वह करेगा।

दबाया हुआ क्रोध किसी भी रास्ते ले जायेगा; तकलीफों में डालेगा; मुश्किलों में डालेगा। दबाया हुआ अहंकार नये-नये रास्ते पर ले जायेगा। दबाया हुआ लोभ नये-नये रास्ते खोजेगा।

मैं एक संन्यासी के पास था। उनसे मेरी बात होती थी। वे संन्यासी मुझसे बार-बार कहते...

और संन्यासी बेचारे के पास और कुछ कहने को तो होता नहीं...। धनपति के पास जाइए, वह अपने धन का हिसाब बताता है: कि इतने करोड़ थे, इतने करोड़ हो गये; मकान छः मंजला था सात मंजला हो गया! पण्डितों के पास जाइए तो वे अपना बताते हैं: कि अभी एम०ए० भी हो गये, पी०एच्०डी० भी हो गये, अब डी० लिट भी हो गये; अब यह हो गये, वह हो गए! पांच किताबें छपी थीं, अब पन्द्रह छप गयीं! वह अपना बतायेंगे। साधु सन्यासी क्या बताये? वह भी अपना हिसाब रखता है, त्याग का।

···वे मुझसे बार-बार कहते, "मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी।" सत्य ही कहते होंगे। चलते वक्त मैंने पूछा—"महाराज, यह लात मारी कब?" कहने लगे, "कोई बीस-पच्चीस साल हो गये।" मैंने कहा "लात ठीक-से लग नहीं पायी, नहीं तो पच्चीस साल तक याद रखने की क्या जरूरत है? पच्चीस साल बहुत लम्बा वक्त है। अब लात मार ही दी तो खत्म करो बात। पच्चीस साल याद रखने की क्या जरूरत है...?"

लेकिन, वे अखबार की कटिंग रखे हुए थे अपनी फाइल में, जिसमें छपी थी पच्चीस साल पहले यह खबर। कागज पुराने पड़ गये थे; पीले पड़ गये थे, लेकिन मन को बड़ी राहत देते होंगे। दिखाते-दिखाते गन्दे हो गये थे। अक्षर भी समझ में नहीं आते थे। लेकिन उनको बड़ी तृप्ति मिलती होगी।

···दस-बीस साल पहले उन्होंने लाखों रुपये पर लात मारी। मैंने उनसे कहा, "लात ठीक-से लग जाती तो रुपये भूल जाते। लात ठीक-से लगी नहीं। लात लौटकर वापस आ गयी...।"

पहले अकड़ रही होगी कि मेरे पास लाखों रुपये हैं। अहंकार रहा होगा। सड़क पर चलते होंगे तो भोजन की कोई जरूरत न रही होगी। बिना भोजन के भी चले जाते होंगे। ताकत गयी नहीं रही होगी। भीतर ख्याल रहा होगा कि लाखों रुपये मेरे पास हैं। फिर रुपयों को छोड़ दिया, त्याग कर दिया। जबसे त्याग किया, तबसे अकड़ दूसरी आ गयी: कि मैंने रुपयों को लात मार दी! मैं कोई साधारण आदमी हूं?

और पहली अकड़ से दूसरी अकड़ ज्यादा खतरनाक है। पहले अहंकार से दूसरा अहंकार ज्यादा सूक्ष्म है।

··'दबाया हुआ अहंकार वापस लौट आया। अब वह और बारीक होकर आया है, कि जिसकी पहचान भी न हो सके।

जो भी आदमी चित्त के साथ दमन करता है, वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म उलझनों में उलझता चला जाता है; यह मैंने तीसरे सूत्र में कहा। दमन से सावधान होना। दमन करने वाला आदमी रुग्ण हो जाता है, अस्वस्थ हो जाता है, बीमार हो जाता है। और दमन का अन्तिम परिणाम विक्षिप्तता है, मैडनेस है।

तीन सूत्रों पर मैंने आपसे कुछ बातें कहीं। अब चौथे और अन्तिम सूत्र के सम्बंध में आपसे थोड़ी-सी कहना चाहता हूं। चौथा सूत्र, छोटा-सा सूत्र है। सूत्र छोटा है, लेकिन बड़ी विस्फोटक शक्ति है उसमें। जैसे एक छोटे-से अणु में इतनी ताकत रहती है कि सारी पृथ्वी को वह नष्ट कर सकता है, वैसी ही, इस छोटे-से सूत्र में शक्ति है। इन तीनों जंजीरों से मुक्त होने के लिए एक ही सूत्र है, और वह सूत्र है—जागरण, जागना, अवेयरनेस, ध्यान, अमूर्छा, होश, माइन्ड-फुलनेस; या कोई भी नाम दें। एक ही सूत्र है, छोटा-सा—'जागो।'

जागो उन सिद्धान्तों के प्रति, जिनको पकड़े हुए हो। और जागते ही उन सिद्धान्तों से छुटकारा शुरू हो जायेगा; क्योंकि सिद्धान्त आपको नहीं पकड़े हैं, आप ही उन्हें पकड़े हुए हैं। और जैसे ही आप जागेंगे, आपको लगेगा, कितनी अजीब बात है: कि मैं अपने ही हाथों से गुलाम बना हुआ हूं और मेरी गुलामी की जंजीर मेरे अपने ही हाथ में है! और एक बार यह दिखाई पड़ जाये, तो फिर छूटने में देर नहीं लगती।

पहला जागरण सिद्धान्तों, वादों, सम्प्रदायों, धर्मों, गुरुओं, महात्माओं के प्रति, जिनको हम जोर से पकड़े हुए हैं। कुछ भी नहीं है हाथ में, कोरी राख है शब्दों की, लेकिन जोर से पकड़े हुए हैं। कभी हाथ खोलकर भी नहीं देखते हैं। डर लगता है कि कहीं देखा तो बहुत मुश्किल हो जायेगी। लकिन गौर से देखना जरूरी है कि मैं किन-किन चीजों से जकड़ा हुआ हूं; मेरी जंजीरें कहां-कहां हैं? मेरी स्लेवरी, मेरी गुलामी कहां है; मेरी आध्यात्मिक दासता कहां टिकी है?

एक-एक चीज के प्रति जागना जरूरी है। जागने के अतिरिक्त, गुलामी को तोड़ने के लिए और कुछ भी नहीं करना पड़ता है। और जागते ही गुलामी छूटनी शुरू हो जाती है। क्योंकि, यह गुलामी कोई लोहे की जंजीरों की नहीं है, जिसे तोड़ने के लिए हथोड़े की चोट करनी पड़े। ये गुलामी

हमारे सोये हुए होने के कारण है। हमने कभी होश से देखा ही नहीं है कि हमारे भीतर की मनोदशा क्या है। बस, हम चलते रहे अन्धेरे में। जाग जायेंगे तो पता चलेगा कि यह तो हमने अपने ही हाथों से पागलपन का इन्तजाम कर रखा है।

और, इसके लिये कोई दूसरा जिम्मेवार नहीं है, हम खुद ही जिम्मेवार हैं। इसे हम तोड़ दे सकते हैं, जागरण से। जागरण—सिद्धान्तों, शास्त्रों, सम्प्रदायों के प्रति। जागरण—हिन्दू होने प्रति, मुसलमान होने के प्रति, हिन्दुस्तानी होने के प्रति, चीनी होने के प्रति। जागरण—सारी सीमाओं के प्रति, सारे बन्धनों के प्रति, समस्त मोह के प्रति। यह जो कण्डीशनिंग है भीतर माइन्ड की, उसके प्रति जागें, देखें कि यह क्या है? यह मैं क्यों बंधा हूं? किसने मुझे हिन्दू बना दिया है? किसने मुझे सिद्धान्त से अटका दिया है?

मन में भीड़ घुस जाती है। चीजें बाहर से आती हैं और हम उन्हें पकड़ लेते हैं। उन्हें छोड़ देना है। उन्हें छोड़ते ही चित्त को एक फ्रीडम, एक मुक्ति की अवस्था उपलब्ध हो जाती है।

भीड़ के प्रति जागना है कि मैं जो भी कर रहा हूं, वह भीड़ को देखकर तो नहीं कर रहा हूं?

आप मन्दिर चले जा रहे हैं—सुबह ही उठकर, भागते हुए, राम-राम जपते हुए—सुबह की सर्दी में। स्नान कर लिया है और भागते चले जा रहे हैं। सोचते हैं कि मन्दिर जा रहा हूं। जरा जागकर देखना—कहीं इसलिए तो आप मन्दिर नहीं जा रहे हैं कि लोग आप को देख लें: कि मैं आदमी धार्मिक हूं!

कौन मन्दिर जाता है...? भीड़ देख ले कि यह आदमी मन्दिर जाता है, इसलिए आप मन्दिर जाते हैं। किसको प्रयोजन है दान देने से...? लोग देख लें, कि ये आदमी दानी है, इसलिये आप देते हैं। अगर एक आदमी भीख मांगता है सड़क पर, तो आपको पता होगा कि भिखारी अकेले में किसी से भीख मांगने में झिझकता है। चार छः आदमी हों, तो जल्दी-से हाथ फैलाकर खड़ा हो जाता है क्योंकि उसे पता है कि पांच आदमियों के सामने यह छठवां आदमी भीख देने से इन्कार नहीं कर सकेगा। यह ख्याल रखेगा कि पांच आदमी क्या सोचेंगे? कि इतना बड़ा आदमी है, दस पैसे नहीं छोड़ सकता!

तो भिखमंगा भीड़ में जल्दी से पीछा करता है। और दस आदमी को

देखकर आपको दस पैसे देने पड़ते हैं। वह दस पैसे आप भिखारी को नहीं दे रहे हैं, वह दस पैसे आप इन्श्योरेन्स कर रहे हैं अपनी इज्जत का, दस आदमियों में। उन दस पैसों का आप क्रैडिट बना रहे हैं, इज्जत बना रहे हैं, बाजार में। और आपको ख्याल भी नहीं होगा, आप घर लौटकर कहेंगे—बड़ा दान किया; आज एक आदमी को दस पैसे दिये! लेकिन, भीतर पूरे जागकर देखना कि किसको दिये? क्या भिखमंगे को दिये? उसके लिये तो भीतर से गाली निकल रही थी कि यह दुष्ट कहां से आ गया! दिये उनको, जो साथ थे।

भीड़ सब तरफ से पकड़े हुए है।

एक गांव में मैंने देखा, एक नया मन्दिर बन रहा था; भगवान का मन्दिर बन रहा था...।

कितने भगवान के मन्दिर बनते चले जाते हैं।

...नया मन्दिर बन रहा था। उस गांव में वैसे ही बहुत मन्दिर थे...!

आदमियों के रहने के लिये जगह नहीं है और भगवान के लिए मन्दिर बनते चले जाते हैं! और भगवान का कोई पता नहीं है कि वे मन्दिर में रहने को कब आयेंगे; आयेंगे कि नहीं आयेंगे, इसका कुछ पता नहीं है।

...नया मन्दिर बन रहा था तो मैंने उस मन्दिर को बनाने वाले एक कारीगर से पूछा, "बात क्या है? बहुत मन्दिर हैं गांव में, भगवान का कहीं पता नहीं चलता! ये एक और मन्दिर किसलिए बना रहे हो?"

बूढ़ा था कारीगर। अस्सी साल उसकी उम्र रही होगी। बामुश्किल मिट्टी खोद रहा था। उसने कहा, "आपको शायद पता नहीं, मंदिर भगवान के लिए नहीं बनाए जाते हैं।" मैंने कहा, "बड़े नास्तिक मालूम होते हो। मन्दिर भगवान के लिए नहीं बनाये जाते तो किसके लिए बनाये जाते हैं?"

उस बूढ़े ने कहा, "पहले मैं भी यही सोचता था, लेकिन जिन्दगी भर मन्दिर बनाने के बाद इस नतीजे पर पहुंचा हूँ कि भगवान के लिए इस जमीन पर मन्दिर कभी नहीं बनाया गया।" मैंने पूछा, "मतलब क्या है तुम्हारा? उस बूढ़े ने मेरा हाथ पकड़ा और कहा कि भीतर आओ...।

...और बहुत कारीगर वहां काम कर रहे थे। लाखों रुपये का काम था। वह कोई साधारण आदमी मन्दिर नहीं बनवा रहा था। सबसे पीछे,

जहां कारीगर पत्थरों को खोदते थे, उस बूढ़े ने ले जाकर मुझे वहां खड़ा कर दिया, एक पत्थर के सामने कहा, "इसलिए मन्दिर बन रहा है।"

उस पत्थर पर मन्दिर के बनाने वाले का नाम स्वर्ण-अक्षरों में खोदा जा रहा था...!

उस बूढ़े ने कहा—सब मन्दिर इस पत्थर के लिए बनते हैं। असली चीज यह पत्थर है, जिस पर नाम लिखा रहता है कि किसने बनवाया।

मन्दिर तो बहाने हैं पत्थर को लगाने के। वह पत्थर असली चीज है। उसकी वजह से मन्दिर भी बनाना पड़ता है। मन्दिर बहुत मंहगा पड़ता है; लेकिन उस पत्थर को लगाना हो तो कोई क्या करेगा, इसलिये बनाना पड़ता है। मन्दिर पत्थर लगाने के लिए बनते हैं, जिस पर खुदा रहता है कि किसने यह मन्दिर बनाया। लेकिन, मन्दिर बनाने वाले को शायद यह होश नहीं होगा कि यह मन्दिर भीड़ के चरणों में बनाया जा रहा है, भगवान के चरणों में नहीं। इसलिए तो मंदिर हिन्दू का होता है, मुसलमान का होता है, जैन का होता है; मन्दिर भगवान का कहाँ होता है?

भीड़ से सावधान होने का मतलब यह है कि भीतर जागकर देखना अपने चित्त की वृत्तियो को: कि कहीं भीड़ तो मेरा निर्माण नहीं करती है; चौबीस घण्टे भीड़ तो मुझे मोल्ड नहीं करती है; कहीं भीड़ के सांचे में तो मुझे नहीं ढाला जा रहा है?

और, ध्यान रहे! भीड़ के सांचे में कभी किसी आत्मा का निर्माण नहीं होता, भीड़ के सांचे में मुर्दे आदमी ढाले जाते हैं; और पत्थर हो जाते हैं। जिन्हें आत्मा को पाना होता है, वे भीड़ के साँचे को छोड़कर ऊपर उठने की कोशिश करते हैं। लेकिन, कुछ और करने की जरूरत नहीं है, सिर्फ जागने की जरूरत है। चित्त की वृतियों को जागकर देखते रहें कि मुझे पकड़ तो नहीं रही है?

और बड़े मजे की बात है, अगर कोई जागकर देखता है तो भीड़ की पकड़ उस पर बन्द हो जाती है। बहुत हल्कापन, बहुत वेटलेसनेस मालूम होती है, क्योंकि वजन भीड़ का है हमारे सिरों पर। हम दिखायी पड़ रहे हैं कि अकेले खड़े हैं, हमारे सिर पर कुछ भी नहीं है। लेकिन जरा गौर से देखना—किसी के सिर पर गांधी बैठे हैं, किसी के सिर पर मुहम्मद बैठे हैं, किसी के सिर पर महावीर बैठे हैं और अकेले नहीं बैठे हैं, अपने चेले चांटियों के साथ बैठे हुए हैं। और एक-दो दिन से नहीं बैठे हुए हैं, हजारों, लाखों साल से बैठे हुए

हैं।

सिर भारी हो गया है, कतार लग गयी है, कतार आकाश को छू रही है; इतने लोग ऊपर बैठे हुए हैं। इन सबको उतार देने की जरूरत है। अगर अपने को पाना है, तो अपने सिर से सबको उतार देने की जरूरत है, कोई हक नहीं है किसी को कि किसी की आत्मा पर पत्थर होकर बैठ जाये। लेकिन वे बेचारे नहीं बैठे हैं, आप ही उन्हें बिठाये हुए हैं। उनका कोई कसूर नहीं है। वह तो घबराये हुए हैं कि यह आदमी कब तक ढोता रहेगा! हमारे प्राण निकले जा रहे है, कितने दिन से बिठाए हुए है यह आदमी, हमें छोड़ता ही नहीं।

आप ही उन्हें बिठाये हुए हैं। जागते ही टूट जायेगा यह मोह। फिर सिर हल्का हो जायेगा; मन हल्का हो जायेगा। उड़ने की तैयारी शुरू हो जायेगी। पंख खुल जायेंगे।

और, तीसरी बात : जागना है, दमन के प्रति।

लोग सोचते हैं—दमन छोड़ देंगे तो भोग शुरू हो जायेगा। लोग सोचते हैं—अगर क्रोध नहीं दबाया तो क्रोध हो जायेगा, और झंझट हो जायेगी अगर मालिक की गर्दन पकड़ लेंगे, तो और दिक्कत की बात हो जायेगी। पत्नी की गर्दन पकड़ना ज्यादा कन्वीनियन्ट, ज्यादा सुविधापूर्ण है। यह झंझट की बात हो जायेगी। इसके आर्थिक दुष्परिणाम हो जायेंगे—अगर मालिक की गर्दन पकड़ेंगे। और मालिक की गर्दन पकड़ने के लिये पत्नी भी कहेगी—'उसकी गर्दन मत पकड़ना, मेरी ही पकड़ना; क्योंकि मालिक की गर्दन पकड़ी तो बच्चों का क्या होगा; पत्नी का क्या होगा? बहुत दिक्कत में पड़ जायेंगे। तुम तो मेरी ही गर्दन पकड़ लेना।' पत्नी भी यही कहेगी। 'यह ज्यादा सुविधापूर्ण, ज्यादा समझदारी का काम है कि मालिक को छोड़कर, आकर मुझपर टूट पड़ना।'

नहीं, मैं आपसे कहना चाहता हूं—क्रोध को दबाने की जरूरत नहीं है; क्रोध को भी देखने, और जानने, और जागने की जरूरत है। जब किसी के प्रति मन में क्रोध पकड़े, तो जागकर देखना कि क्रोध पकड़ रहा है; होश से भर जाना कि क्रोध आ रहा है; देखना अपने भीतर कि क्रोध का धुआं उठ रहा है। क्रोध क्या-क्या कर रहा है भीतर—देखना; और एक अद्भुत् अनुभव होगा जीवन में पहलीबार : कि देखते ही क्रोध विलीन हो जाता है;

न दबाना पड़ता है, न करना पड़ता है।

आज तक दुनिया में कोई आदमी जागकर क्रोध नहीं कर पाया है।

बुद्ध एक गांव से गुजरते थे। कुछ लोगों ने भीड़ लगा ली और बहुत गालियां दीं बुद्ध को...।

अच्छे लोगों को हमने सिवाय गालियां देने को और कुछ भी नहीं दिया। जब वे मर जाते हैं तो पूजा वगैरह भी करते हैं; लेकिन वह मरने के बाद की बात है। जिन्दा बुद्ध को तो गाली देनी ही पड़ेगी। लेकिन, ऐसे लोग थोड़े डिसटर्बिंग होते हैं; थोड़ी गड़बड़ कर देते हैं; नींद तोड़ देते हैं। इसलिये गुस्सा आ जाता है। तो आदमी गाली देने लगता है। कसूर भी क्या है।

... गांव के लोगों ने घेरकर बुद्ध को बहुत गालियां दीं। बुद्ध ने उनसे कहा, "मित्रो, तुम्हारी बात अगर पूरी हो गयी हो तो अब मैं जाऊं, मुझे दूसरे गांव जल्दी पहुँचना है।"

वे लोग कहने लगे, "बात? हम गालियां दे रहे हैं, सीधी-सीधी। समझ में नहीं आतीं आपको? क्या बुद्धि बिलकुल खो दी है? हम सीधी-सीधी गालियां दे रहे हैं, बात नहीं कर रहे हैं।"

बुद्ध ने कहा, "तुम गालियाँ दे रहे हो, वह मैं समझ गया। लेकिन मैंने तो गालियां लेना बन्द कर दिया है; तुम्हारे देने से क्या होगा, जब तक मैं ले न सकूं? और मैं ले नहीं सकता। क्योंकि, जब से जाग गया हूं, तब से गाली लेना असंभव हो गया है। जागकर कोई गलत चीज कैसे ले सकता है? आप बेहोशी में चलते हैं, इसलिये पैर में कांटा गड़ जाता है; अगर देखकर चलते हों, तो कैसे कांटा गड़ सकता है! गलती से आदमी दीवाल से टकरा सकता है; जब आँखें खुली हों तो दरवाजे से निकलता है।"

बुद्ध ने कहा, "मैं आँखें खोलकर, जागकर, जब से जीने लगा हूं, तब से गालियां लेने का मन ही नहीं करता। अब मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। कोई दस साल पहले तुम्हें आना चाहिए था। तुम जरा देर करके आये हो। दस साल पहले आते, तो मजा आ जाता। तुमको मजा आ जाता, लेकिन हमको तो बहुत तकलीफ होती। हमको तो अभी मजा आ रहा है। लेकिन तब तुम्हें बहुत मजा आ जाता; क्योंकि मैं भी दुगुने वजन की गाली तुम्हें देता। लेकिन अब बड़ी मुश्किल है। होश से भरा हुआ आदमी गाली नहीं दे

सकता है। . . .तो मैं जाऊं ?"

वे लोग बड़े हैरान हो गये। बुद्ध ने कहा, "जाते वक्त एक बात और तुमसे कह दूं : पिछले गांव में कुछ लोग मिठाइयां लेकर आ रहे थे। मैंने कहा कि मेरा पेट भरा है। वह भी जागा हुआ था, इसलिए कह सका; क्योंकि सोया हुआ आदमी मिठाइयां देखकर भूल जाता है कि पेट भरा है। बेहोश आदमी भूख देखकर नहीं खाता; बेहोश आदमी चीजें देखकर खाता है। होश से भरा आदमी पेट की भूख देखकर खाता है।

"मेरा पेट भरा हुआ था। वह भी होश की वजह से। दस साल पहले अगर वे भी आये होते, तो उनकी थालियां उन्हें वापस न ले जानी पड़तीं। मैं उन्हें जरूर खा लेता। लेकिन, जबसे होश आ गया है, जागकर देखता रहता हूं। इसलिये गलती करनी बहुत मुश्किल हो गई है। वे बेचारे थालियां वापस ले गये। तो मैं तुमसे पूछता हूं, उन्होंने उन मिठाइयों का क्या किया होगा" ?

उस गाली देनेवाली भीड़ में से एक आदमी ने कहा, "क्या किया होगा ? घर में जाकर मिठाइयां बांट दी होंगी।"

बुद्ध ने कहा, "यही मुझे चिन्ता हो रही है कि तुम क्या करोगे ? तुम गालियों की थालियां लेकर आये हो—और मैं लेता नहीं; अब तुम उन गालियों का क्या करोगे; किसको बांटोगे ?

बुद्ध कहने लगे, "मुझे बड़ी दया आती है तुम पर। अब तुम करोगे क्या? इन गालियों का क्या करोगे? मैं लेता नहीं; मैं ले सकता नहीं। चाहूं भी तो नहीं ले सकता। मुश्किल में पड़ गया हूं, जाग जो गया हूँ।"

कोई आदमी जागकर क्रोध नहीं कर सकता। दमन, निद्रा में चलता है और जागरित आदमी को दमन की जरूरत नहीं रहती।

एक आदमी मेरे पास आया, कुछ समय हुआ। उसने कहा—मुझे बहुत क्रोध आता है। आप कहते हैं, जागो, जागो। मुझसे नहीं होता है, यह जागना। जब वह आता है, तब आ ही जाता है।

तो मैंने एक कागज पर उसको लिखकर बड़े-बड़े अक्षरों में दे दिया—"अब मुझे क्रोध आ रहा है" और कहा, इसको खीसे में रख लो। और जब भी क्रोध आये तो निकालकर एक दफा पढ़कर इसे खीसे में वापिस रख लेना और जो तुम्हें समझ में आये करना।

वह आदमी पन्द्रह दिन बाद आया और कहने लगा—बड़ी हैरानी की बात है। इस कागज में न-जाने कैसा मन्त्र है! जब भी क्रोध आता है, हाथ ले जाता हूं खीसे की तरफ कि क्रोध की जान निकल जाती है! क्रोध आ रहा है, जैसे ही यह ख्याल आया कि हाथ भीतर खीसे की तरफ बढ़ने लगते हैं और क्रोध वापिस लौट जाता है!

बस, थोड़ी-सी समझ की जरूरत है जीवन के प्रति। जीवन छोटे-छोटे राजों पर निर्भर है। और, बड़े-से-बड़ा राज यह है कि सोया हुआ आदमी भटकता चला जाता है चक्कर में, और जागा हुआ आदमी चक्कर के बाहर हो जाता है।

जागने की कोशिश ही धर्म की प्रक्रिया है। जागने का मार्ग ही योग है। जागने की विधि का नाम ध्यान है। जागना ही एकमात्र प्रार्थना है। जागना ही एकमात्र उपासना है। जो जागते हैं, वे प्रभु के मन्दिर को उपलब्ध हो जाते हैं। जागते ही वृत्तियां, व्यर्थताएं, कचरा, कूड़ा-कर्कट चित्त से गिरना शुरू हो जाता है। धीरे-धीरे चित्त निर्मल होता चला जाता है जागे हुए आदमी का। और जब चित्त निर्मल हो जाता है, तो चित्त दर्पण बन जाता है। जैसे, झील निर्मल हो, तो उसमें चांद-तारों की प्रतिच्छवि बनती है—और आकाश में भी चांद-तारे उतने सुन्दर नहीं मालूम पड़ते, जितने कि निर्मल झील की छाती पर चमक कर मालूम पड़ते हैं—वैसे ही, जब चित्त निर्मल हो जाता है जागे हुए आदमी का, तो चित्त की निर्मलता में परमात्मा की छवि दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। फिर वह निर्मल-चित्त आदमी कहीं भी जाये—फूल में भी उसे परमात्मा मिलता है; पत्थर में भी; मनुष्यों में भी; पक्षियों में भी; पदार्थों में भी। फिर उसके लिए पूरा जीवन ही परमात्मा हो जाता है।

जीवन की क्रांति का अर्थ है, 'जागरण की क्रान्ति'। इन तीन दिनों में इस जागरण के बिन्दु को समझाने के लिए मैंने ये सारी बातें कहीं। लेकिन, इससे जागरण समझ में नहीं आ सकता है। वह तो आप जागेंगे तो ही समझ में आ सकता है। और, कोई दूसरा आपको नहीं जगा सकता, आप ही—बस, सिर्फ आप ही अपने को जगा सकते हैं।

तो देखें अपने भीतर और एक-एक चीज के प्रति जागना शुरू करें। जैसे-जैसे जागरण बढ़ेगा, वैसे-वैसे जीवन बढ़ेगा—मृत्यु कम होगी। जिस दिन जागरण पूर्ण होगा, उस दिन मृत्यु विलीन हो जायेगी; जैसे थी ही नहीं। जैसे

कोई अन्धेरे कमरे में एक आदमी दिया लेकर पहुँचता है कि अन्धेरा खो जाता है। जैसे था ही नहीं। ऐसे ही जो आदमी जागरण का दिया लेकर भीतर जाता है, उसकी मृत्यु खो जाती है, दुख खो जाता है, अशान्ति खो जाती है और उसे अमृत उपलब्ध होता है। और, वह--जिसका कोई अन्त नहीं; वह --जिसका कोई प्रारम्भ नहीं; वह--जो असीम है; वह--जो प्रभु है, उसके मन्दिर में प्रवेश हो जाता है।

अन्त में यही प्रार्थना करता हूं कि उस मन्दिर में सबका प्रवेश हो जाये। लेकिन, किसी की कृपा से नहीं होगा यह; किसी के प्रसाद से, आशीर्वाद से नहीं होगा। अपने ही श्रम, अपने ही संयम, अपनी ही साधना से होगा।

जो जागते हैं, वे पा लेते हैं। जो सोये रह जाते हैं, वे खो देते हैं।

मेरी बातों को इन चार दिनों में इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुग्रहीत हूं और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूँ, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

आश्रम में उपलब्ध
भगवान श्री रजनीश हिन्दी साहित्य

	रु. पैसे
१. जिन खोजा तिन पाइयां	४०-००
२. ताओ-उपनिषद्, भाग-१	४०-००
३. ताओ-उपनिषद्, भाग-२	४०-००
४. कृष्ण : मेरी दृष्टि में	४०-००
५. महावीर : मेरी दृष्टि में	४०-००
६. पाथेय	३५-००
७. महावीर-वाणी, भाग-१	३०-००
८. महावीर-वाणी, भाग-२	३०-००
९. गीता-दर्शन, अध्याय-४	३०-००
१०. गीता-दर्शन, अध्याय-५	१५-००
११. ईशावास्य उपनिषद्	१५-००
१२. निर्वाण उपनिषद्	१५-००
१३. पद घुंघरू बांध	८-००
१४. सत्य की पहली किरण	५-००
१५. प्रभु की पगडंडियां	६-००
१६. मैं कहता आंखन देखी	६-००
१७. संभोग से समाधि की ओर	६-००
१८. क्रांति-बीज	६-००
१९. गांधीवाद: एक और समीक्षा	५-५०
२०. पथ के प्रदीप	६-००
२१. अस्वीकृति में उठा हाथ	५-००
२२. सत्य की खोज	५-००
२३. गहरे पानी पैठ	७-००
२४. ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया	५-००
२५. मुल्ला नसरुद्दीन	५-००

	रु. पैसे
२६. समाजवाद से सावधान	५-००
२७. समाजवाद अर्थात् आत्मघात	६-००
२८. शून्य की नाव	५-००
२९. शून्य के पार	४-००
३०. शान्ति की खोज	३-५०
३१. विद्रोह क्या है ?	२-५०
३२. पथ की खोज	२-००
३३. सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	२-००
३४. सूर्य की ओर उड़ान	२-००
३५. जनसंख्या विस्फोट	१-५०
३६. क्रांति की वैज्ञानिक प्रक्रिया	१-५०
३७. प्रेम के स्वर	१-५०
३८. मेडीसिन और मेडीटेशन	१-२५
३९. युवक और यौन	१-००
४०. अमृत-कण	१-००
४१. अहिंसा-दर्शन	१-००
४२. शिव-सूत्र (डीलक्स)	५०-००
४३. शिव-सूत्र (सामान्य)	२५-००
४४. महावीर या महाविनाश	१५-००
४५. जीवन-क्रान्ति के सूत्र	८-००
४६. गूंगे केरी सरकरा (डीलक्स)	५०-००
गूंगे केरी सरकरा (सामान्य)	३०-००
४७. ताओ उपनिषद, भाग-३	

शीघ्र प्रकाश्य

१. सहज समाधि भली (झेन-कथाएं)
२. गीता-दर्शन (अध्याय-१०)
३. इक ओंकर सतनाम (जपुजी)
४. सुनो भाई साधो (कबीर-वाणी)

आश्रम से प्रकाशित पत्रिकाएं :

१. रजनीश फाउन्डेशन न्यूज़लेटर (हिन्दी पाक्षिक) वार्षिक शुल्क २४—००

२. रजनीश-दर्शन (हिंदी द्वैमासिक) २४—००

भगवान श्री रजनीश की समस्त पुस्तकों के लिए निम्नलिखित पते पर संपर्क करें या लिखें :

सचिव
रजनीश फाउन्डेशन
श्री रजनीश आश्रम
१७, कोरेगांव पार्क
पूना — ४११ ००१
फोन : २८१२७

Available Books in English

I. Original English Books and Booklets : Rs.

1. The Ultimate Alchemy (Vol. I) 40-00
2. Flowers of Love 15-00
3. Two Hundred Two (Mulla Jokes) 10-00
4. Wisdom of Folly (Mulla Jokes) 6-00
5. Meet Mulla Nasrudin (Mulla Jokes) 5-00
6. Meditation : A New Dimension 3-00
7. Beyond and Beyond 3-00
8. LSD : A Shortcut to False Samadhi 2-00
9. Yoga : As a Spontaneous Happening 2-00
10. The Vital Balance 1-50
11. The Gateless Gate 2 00
12. The Eternal Message 3-00
13. The Dimensionless Dimension 4-00
14. The Book of the Secrets (Vol. I) 62-00
    (Sixteen discourses on Vigyan Bhairava Tantra)
15. The way of the White Cloud (15 discourses) 66-00
16. I am the Gate 25-00
17. The Mustard seed 105-00
18. Roots and Wings 65-00
19. No water, No Moon 65-00

Still in Press

20. The Book of the Secrets-II (Vigyan Bhairav Tantra)
21. The Supreme Doctrine (ken--upnishad)
22. The Alpha and the Omega-I (Patanjali Yoga-Sutra)
23. The Empty Boat
24. And the Flowers Showered

II. Translated from Original Hindi Version

25. Seeds of Revolution 8-00
26. From Sex to Superconsciousness 6-00
27. Towards the Unknown 1-50
28. Lead Kindly Light 1-50

III Our Periodicals

29. Sannyas (bi-monthly) annual subsc. 60-00
30. Rajneesh Foundation Newsletter (Fortnightly) 24-00

For all books and periodicals, Contact or write to:

Secretary
Rajneesh Foundation
Shree Rajneesh Ashram
17, Koregaon Park,
Poona—411 001 (India) Tel. 28127